

ॐ

परमात्मने नमः

अकलंक-निकलंक

(बलिदान और प्रभावना)

गुजराती लेखक :
ब्रह्मचारी हरिलाल जैन
सोनगढ़

हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्रकाशकीय

जिनधर्म वत्सल महारानी चेलना के जीवन पर आधारित लघु नाटक **महारानी चेलना** का हिन्दी प्रकाशन करते हुए हम अत्यन्त हर्षित हैं।

भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणोत्सव के पावन अवसर पर सोनगढ़ में परम कृपालु पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं भगवती माता बहिनश्री चम्पाबेन के मंगल सान्निध्य में ब्रह्मचारी हरिलाल जैन द्वारा इस लघु नाटक का प्रकाशन किया गया था। जो सोनगढ़ में ही मंचन भी किया गया था। इस नाटक में भगवान महावीर के समकालीन और उनकी धर्मसभा के प्रमुख श्रोता महाराजा श्रेणिक की सहधर्मिणी सम्यग्दर्शन रत्न से सुशोभित महारानी चेलना के धर्म प्रेम को प्रतिबिम्बित किया गया है, जिससे प्रेरणा पाकर महाराजा श्रेणिक ने मिथ्या मार्ग का परित्याग कर सम्यक् जैन मार्ग ही नहीं प्राप्त किया अपितु इसी भव में क्षायिक सम्यक्त्व और तीर्थकर नामकर्म जैसी लोकोत्तर पुण्यप्रकृति का भी बन्ध किया।

इस नाटक के माध्यम से सभी भव्य जीव वीतरागमार्ग की आराधना एवं प्रभावना की प्रेरणा प्राप्त करें इस भाव से इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

निवेदक

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई

लेखक का निवेदन

अकलंक और निकलंक... दो भाई... उसमें से निकलंककुमार ने जैनधर्म की सेवा के लिये प्राणों का बलिदान दिया और अकलंककुमार ने जैनधर्म की महान प्रभावना की। बलिदान और प्रभावना के इन प्रसंगों को प्रस्तुत करता हुआ यह एक धार्मिक नाटक है। अकलंक-निकलंक का आदर्श जीवन देखकर जीवों को जैनधर्म के प्रति भक्ति जागृत हो और तत्त्वज्ञान के उत्तम संस्कार प्राप्त हों, वह इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है।

इस नाटक के मुख्य दो पात्र—अकलंक और निकलंक। वीर संवत् 2484 में जब सोनगढ़ में यह नाटक पहली बार मंचन किया गया। तब इसमें अकलंक का पात्र करनेवाले भाई धीरेन्द्रकुमार और निकलंक का पात्र करनेवाले भाई विनोदकुमार इन दोनों उत्साही युवकों का आज तो स्वर्गवास हो गया है परन्तु गुरुप्रताप से आज हजारों युवक बन्धु तैयार हुए हैं और ऐसे नाटकों द्वारा तथा साहित्य द्वारा अकलंक-निकलंक समान होने की उत्तम प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं।

बालकों में उत्तम संस्कार प्रवाहित करने के लिये आज ऐसे साहित्य की अत्यन्त आवश्यकता है। समाज इस ओर जितना ध्यान देगी, उतनी अधिक उन्नति होगी।

जैनम् जयतु शासनम्

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

अकलंक-निकलंक

उपोद्घात

(सूत्रधार द्वारा उद्घोषणा)

आदरणीय साधर्मी भाईयों तथा बहिनों

जैनशासन के प्रताप से आज हम छोटे बालक आपके समक्ष एक धार्मिक नाटक प्रस्तुत कर रहे हैं। यह नाटक अकलंक-निकलंक के जीवन का है। अकलंकस्वामी जैनधर्म के महान धुरन्धर आचार्य थे, और निकलंक उनके छोटे भाई थे। वे दोनों जैनधर्म के परमभक्त थे। उनके समय में जैनधर्म का विकास अवरुद्ध हो गया था और बौद्धधर्म का विशेष जोर था... इसलिए जैनधर्म का बहुत विकास करके उसकी महान प्रभावना करने की उन दोनों भाईयों बहुत उत्कण्ठा थी। पिताजी के साथ ही दोनों भाईयों ने ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा अंगीकार कर ली और अपना जीवन जैनधर्म की सेवा में अर्पित कर दिया। पश्चात् जैनधर्म की प्रभावना के लिये दोनों भाईयों ने क्या-क्या किया? वह आप इस संवाद में देखेंगे।

इसमें कोई ऐतिहासिक क्षति होवे तो उसे लक्ष्य में न लेकर मात्र जैनधर्म के प्रति भक्ति का ही उद्देश्य लक्ष्य में रखने की प्रार्थना है।

जयजिनेन्द्र!

प्रथम अंक
बलिदान

पहला दृश्य

तत्त्वचर्चा और मुनिदर्शन

(जंगल में मुनिराज बैठे हैं, यह दिखाने के लिए चित्र या फोटो रखें। वहाँ बालक खेलने के लिए आते हैं। अकलंक-निकलंक के बचपन का नाम अकु और निकु है।)

अकु : निकु! आज हम कौन-सा खेल खेलेंगे ?

निकु : भाई! आज से तो दशलक्षण महापर्व प्रारम्भ हुआ है, इसलिए हम इन धर्म के दिनों में खेलना-कूदना बन्द करके धर्म की आराधना करें तो कितना अच्छा रहे ?

ज्योति : हाँ भाई निकु! तुम्हारी बात बहुत अच्छी है।

आशीष : तो चलो, हम सब इसी समय धर्म-चर्चा प्रारम्भ करते हैं।

हंसमुख : हाँ भाई आशीष! चलो, तत्त्वचर्चा में सभी को आनन्द आयेगा।

पारस : अहो! देवलोक के देव भी हजारों-लाखों वर्षों तक धर्म-चर्चा करते हैं। आत्मस्वरूप की चर्चा सुनने का मुझे भी बहुत रस है।

चन्द्र : हाँ, तुम बचपन से ही बहुत रुचिवान हो।

भरत : चलो ! हम अकु-निकु से प्रश्न पूछते हैं और वे हमें समझायेंगे।

अकु : बहुत अच्छा, खुशी से पूछो। तत्त्वचर्चा से हमें भी आनन्द होगा।

ज्योति : भाई ! अनन्त काल में हमको यह मनुष्य जन्म मिला है तो अब इस जीवन में करनेयोग्य कार्य क्या है ?

अकु : मनुष्य जीवन में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करनेयोग्य कार्य है।

आशीष : सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय की आराधना किस प्रकार होती है ?

निकु : इस रत्नत्रय के मुख्य आराधक तो मुनिराज हैं, वे चैतन्यस्वरूप में लीन रहकर रत्नत्रय की आराधना करते हैं।

हंसमुख : रत्नत्रय के मुख्य आराधक मुनिराज हैं, तो क्या गृहस्थों के भी रत्नत्रय की आराधना हो सकती है।

अकु : हाँ, एक अंशरूप में रत्नत्रय की आराधना गृहस्थों के भी हो सकती है।

पारस : क्या अपने-जैसे छोटे बालक भी रत्नत्रय की आराधना कर सकते हैं ?

निकु : हाँ, जरूर कर सकते हैं, परन्तु उस रत्नत्रय का मूल बीज सम्यग्दर्शन है, पहले उसकी आराधना करनी चाहिए।

चन्द्र : अहो ! सम्यग्दर्शन की तो अपार महिमा सुनी है। हे

भाई! यह बताओ कि उस सम्यग्दर्शन की आराधना किस प्रकार से हो?

अकु : आत्मा की वास्तविक लगन (रुचि) लगाकर ज्ञानी सन्तों के निकट पहले उसकी समझ करनी चाहिए और फिर अन्तर्मुख होकर उसका अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है।

भरत : ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा का कैसा अनुभव होता है?

निकु : अहा! उसका क्या वर्णन करना! सिद्ध भगवान के समान वचनातीत आनन्द का अनुभव वहाँ होता है।

(अब अकलंक-निकलंक पूछते हैं और अन्य बालक जवाब देते हैं।)

अकु : देखो! मोक्षशास्त्र में कहा है कि 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' वह व्यवहार श्रद्धा है या निश्चय?

ज्योति : वह निश्चय श्रद्धा है, क्योंकि वहाँ मोक्षमार्ग बताना है और सच्चा मोक्षमार्ग तो निश्चयरत्नत्रय ही है।

निकु : तत्त्व कितने हैं?

आशीष : तत्त्व सात हैं और उन सात तत्त्वों की श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है।

अकु : उन सात तत्त्वों के नाम बताओ।

हंसमुख : जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये सात तत्त्व हैं।

सुरेश : समयसार में तो नव तत्त्व कहे हैं, तो यहाँ भी पुण्य-पाप सहित नव तत्त्व क्यों नहीं कहे?

अकु : पुण्य और पाप का समावेश आस्रव और बन्धतत्त्व में हो जाता है; इसलिए यहाँ उन्हें अलग नहीं कहा।

निकु : इन सात तत्त्वों में उपादेय तत्त्व कौन-कौन से हैं ?

पारस : सात तत्त्वों में से शुद्ध जीवतत्त्व उपादेय है तथा संवर-निर्जरातत्त्व एकदेश उपादेय है और मोक्षतत्त्व पूर्ण उपादेय है।

अकु : बाकी कौन-कौन से तत्त्व रहे ?

चन्द्र : बाकी अजीव, पुण्य, पापसहित आस्रव और बन्ध—ये तत्त्व रहे। ये तत्त्व हेय हैं।

चन्द्र : वाह ! आज सम्यग्दर्शन, पाप और हेय-उपादेय तत्त्व की बहुत ही सुन्दर चर्चा हुई। हम सबको इसके ऊपर गहरा विचार करके सम्यग्दर्शन का प्रयत्न करना चाहिए।

अकु : हाँ भाईयो ! सबको यही करने योग्य है। घर जाकर सब इसका ही प्रयत्न करना। इससे ही जीवन की सफलता है।

(एक और पर्दा ऊँचा होने पर मुनिराज दिखाई देते हैं।)

बालक : अहो, देखो ! देखो !! कोई मुनिराज बैठे हुए दिखायी दे रहे हैं।

अकु-निकु : वाह ! धन्य घड़ी ! धन्य भाग्य !! चलो हम वहाँ जाकर उनके दर्शन करते हैं।

(सभी बालक मुनिराज के पास जाकर नमस्कार करते हैं और स्तुति बोलते हैं:—)

धन्य मुनीश्वर आत्म-हित में छोड़ दिया परिवार।
कि तुमने छोड़ा सब घरबार ॥

धन छोड़ा वैभव छोड़ा समझा जगत असार,
कि तुमने छोड़ा सब संसार ॥टेक ॥

होय दिगम्बर वन में विचरते, निश्चल होय ध्यान जब धरते ।
निज पद के आनन्द में झूलते, उपशम रस की धार बरसते,
आत्म-स्वरूप में झूलते, करते निज आत्म उद्धार ।
कि तुमने छोड़ा सब संसार ॥

निकु : भाई ! चलो, हम गाँव में जाकर मुनिराज के समाचार
जल्दी-जल्दी सबको पहुँचाते हैं ।

अकु : हाँ, चलो । सब एक साथ बोलिये—वीतरागी मुनिराजों
की जय ! दिगम्बर सन्तों की जय !!

दूसरा दृश्य
ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा

(शास्त्र सभा चल रही है, उसमें अकलंक-निकलंक के पिताजी श्री पुरुषोत्तम सेठ नियमसार गाथा-90 पढ़ रहे हैं। श्रोतागण सुन रहे हैं।)

पुरुषोत्तम सेठ :

मिथ्यात्व आदिक भाव की, की जीव ने चिरभावना।

सम्यक्त्व आदिक भाव की पर, की कभी न प्रभावना ॥90 ॥

अहो! आचार्य भगवान कहते हैं कि आत्मस्वरूप के सन्मुख होकर शुद्ध रत्नत्रय की भावना जीव ने पहले कभी नहीं की है। अनन्त काल से मिथ्यात्व आदिक भावों को ही जीव ने भाया है, इसलिए ही वह संसार-परिभ्रमण कर रहा है। इस जगत में वे मुनिवर ही परमसुखी हैं कि जो चैतन्यस्वरूप में मग्न होकर रत्नत्रय को भा रहे हैं। अहो! मुनिवरों के दर्शन हों, वह जीवन भी धन्य है।

(अकु-निकु आकर हर्षपूर्वक कहते हैं।)

अकु-निकु : पिताजी! पिताजी!! अपनी नगरी के उद्यान में चित्रगुप्त मुनिराज पधारे हैं। उनके दर्शन से हमें बहुत आनन्द हुआ है।

पिताजी : वाह! उत्तम समाचार!! चलो, सभी मुनिराज के दर्शन-पूजन करने चलें।

(सब जाते हैं। पर्दा गिरता है। पुनः पर्दा ऊँचा होने पर मुनिराज दिखायी देते हैं। सब लोग अर्घ्य की थाली लेकर आते हैं और नमस्कार करके निम्नलिखित स्तुति बोलते हैं।)

चहुँगति दुख-सागर विषैं, तारन-तरन जिहाज ।
रत्नत्रय निधि नग्न तन, धन्य महा मुनिराज ॥

हे मोक्षसाधक मुनिवरा निज स्वरूप में लवलीन है;
भव-भोग से वैराग्य धर, सिद्धपद साधक हैं;
रत्नत्रय धारक प्रभुजी! धन्य आपका हे जीवन,
तुम चरण कमल पूजकर अब सफल होय मेरा जीवन ॥

ॐहीं श्री दशलक्षण धर्म धारक वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनिराज चित्रगुप्तस्वामी
चरणकमल पूजनार्थे अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...

नगरसेठ : अहो! हमारे धन्य भाग्य हैं कि इस महान दशलक्षण
पर्व के अवसर पर मुनिराज के दर्शन हुए। हे प्रभो! वीतरागी
जैनधर्म का और रत्नत्रय की उत्कृष्ट आराधना का हमें कृपा करके
उपदेश दीजिए।

(श्री मुनिराज उपदेश देते हैं, उसे सूत्रधार पदों के पीछे से बोलता
है।)

मुनिराज : दशलक्षण महापर्व हमारे लिये आत्म-आराधना का
सबसे उत्तम अवसर प्राप्त कराता है। आत्मा का पूर्णानन्दस्वभाव
प्रगट करके जो सर्वज्ञ परमात्मा हुए हैं, उनका उपदेश है कि हे
जीवो! तुम्हारे आत्मा में पूर्ण ज्ञान और आनन्द स्वभाव भरा हुआ
है। उस स्वभाव की श्रद्धा करो, उसका ज्ञान करो एवं उसमें लीन
रहो। स्वरूप में लीनता होने पर चैतन्य का प्रतपन होना अर्थात्
आत्मा में उग्रपने स्थिर होना ही तप है। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और
तप—ऐसी चतुर्विध आराधना के द्वारा चार गति का अन्त करके
सिद्धपद प्राप्त होता है।

अहो जीवो! यह संसार घोर दुःख से भरा हुआ है। उससे

बचने के लिये अत्यन्त भक्तिपूर्वक चतुर्विध आराधना करो। चार आराधनाओं में भी सबसे पहली सम्यक्त्व आराधना है, उस सम्यक्त्व की अतिशय भावपूर्वक आराधना करो और फिर विशेष शक्ति धारण कर चारित्र धर्म अंगीकार करके जीवन सफल बनाओ।

पुरुषोत्तम सेठ : (खड़े होकर कहते हैं) हे प्रभो! आपका कल्याणकारी उपदेश सुनकर हमें अति प्रसन्नता हो रही है। हे प्रभो! चारित्रदशा अंगीकार करने की तो मेरी शक्ति नहीं है, परन्तु इस संसार के क्षणभंगुर भोगों से मेरा चित्त उदास हुआ है, इसलिए आपके समक्ष में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करता हूँ।

(अकु-निकु भी खड़े हो जाते हैं।)

अकु : पिताजी! पिताजी!! आप यह क्या कर रहे हैं ?

पिताजी : बेटा! मैं व्रत ले रहा हूँ।

अकु-निकु : (हाथ जोड़कर) हमको भी व्रत दिलाओ।

पिताजी : (हास्यपूर्वक) बहुत खुशी से लो। पुत्रो! तुम भी व्रत लो।

अकु-निकु : प्रभो! हमारे पिताजी ने जो व्रत लिया है, वह हम भी अंगीकार करते हैं। हमारा यह जीवन जैनधर्म की सेवा में व्यतीत हो।

नगरसेठ : चलो, अब हम दशलक्षण पूजा करने चलें।

(सब लोग मुनिराज को नमस्कार करके नगरी में चले जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

बारह वर्ष बाद जैनधर्म की सेवार्थ

(उपर्युक्त प्रसंग को बारह वर्ष बीत गये हैं। अकलंक-निकलंक बड़े हो गये हैं। उनके विवाह की तैयारी हेतु पिताजी वस्त्राभूषण की व्यवस्था कर रहे हैं कि अकलंक-निकलंक प्रवेश करते हैं।)

निकलंक : पिताजी! यह सब क्या धमाल है ?

पिताजी : हे पुत्रो! अब तुम बड़े हो गये हो, इसलिए तुम्हारे विवाह की तैयारी चल रही है।

दोनों पुत्र : नहीं-नहीं पिताजी! हमने तो बारह वर्ष पूर्व चित्रगुप्त मुनिराज के पास आपके साथ ही ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था।

पिताजी : बेटा! वह तो तुम्हारा बचपन का खेल था।

अकलंक : नहीं पिताजी! हमने वह प्रतिज्ञा खेल समझकर नहीं, अपितु सत्यभाव से ली थी।

पिताजी : पुत्रो! भले ही तुमने सत्यभाव से प्रतिज्ञा ली हो तो भी वह केवल दशलक्षण पर्व जितनी ही थी, जो कि तभी पूर्ण भी हो गयी, इसलिए अब विवाह करने में कोई अड़चन नहीं है।

निकलंक : पिताजी! हो सकता है, आपने उस समय हमारी प्रतिज्ञा मात्र दस दिन की ही समझी हो, परन्तु हमने तो हमारे मन से पूरी जिन्दगी की प्रतिज्ञा ली थी और हम हमारी इस प्रतिज्ञा में अत्यन्त दृढ़ हैं, इसलिए आप कृपा करके हमारे विवाह की बात मत कीजिए।

पिताजी : हे पुत्रों! यदि तुम विवाह नहीं करोगे तो पूरी जिन्दगी क्या करना चाहते हो ?

अकलंक : पिताजी! हमने अपने जैनधर्म की सेवा के लिए सारा जीवन बिताने का निश्चय किया है।

निकलंक : वर्तमान में हमारा जैनधर्म अन्य धर्मों के प्रभाव से बहुत दब गया है, इसलिए उसके प्रचार की इस समय विशेष आवश्यकता है।

अकलंक : पिताजी! जब जैनशासन हमें आवाज देकर पुकार रहा है, तब हम विवाह करके, संसार के बन्धन में बँध जाँ, क्या यह उचित है ? नहीं... नहीं।

निकलंक : हमें विश्वास है कि जैनधर्म के एक परम भक्त होने के नाते आप हमारी बात सुनकर प्रसन्न होंगे और जैनधर्म की सेवा में हमारा जीवन बीते—इसकी हमें सहर्ष आज्ञा प्रदान करेंगे। इतना ही नहीं, जैनधर्म के लिये हमें अपने प्राणों का बलिदान करने का भी मौका मिले तो भी हँसते-हँसते हम अपने प्राणों का बलिदान देकर भी जैनधर्म की विजय-पताका जगत में फहरायेंगे।

(सभा में तालियों की गड़गड़ाहट।)

पिताजी : शाबाश बेटा! शाबाश!! जैनधर्म के प्रति तुम्हारी ऐसी महान भक्ति देखकर अब मुझसे तुमको रोका नहीं जाता। तुम्हारी इस उत्तम भावना में मेरी भी अनुमोदना है।

अकलंक : पिताजी! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा यह जीवन आत्मा के कल्याण के लिये व्यतीत हो, हम अपना आत्महित साधें और जैनधर्म की सेवा के लिये अपना जीवन अर्पित कर दें।

पिताजी : (प्रसन्नता से) जाओ, पुत्रो! जाओ, आत्मा का कल्याण साधो और जैनधर्म की महान प्रभावना करके जिन-शासन की शोभा बढ़ाओ।

(नमस्कार करके दोनों पुत्र जाते हैं। पर्दा गिरता है, और फिर उठता है।)

(अकलंक शास्त्र-स्वाध्याय कर रहे हैं, वहाँ निकलंक आकर नमस्कार करते हैं।)

निकलंक : नमस्ते बड़े भैया! आप किसका स्वाध्याय कर रहे हैं?

अकलंक : मैं 'परमात्म-प्रकाश' का स्वाध्याय कर रहा हूँ।

निकलंक : वाह! परमात्मा का स्वरूप समझने के लिये और भेदज्ञान की भावना के लिये यह बहुत ही सुन्दर शास्त्र है। हे भाई! मुझे भी इसमें से कुछ सुनाओ।

अकलंक : सुनो! इस शास्त्र के अन्त में सम्पूर्ण शास्त्र के साररूप ऐसी भावना करने को कहा है कि मैं सहज शुद्ध ज्ञानानन्द-स्वभाव एक ही हूँ, निर्विकल्प हूँ, उदासीन हूँ, निज निरंजन शुद्धात्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप निश्चय-रत्नत्रयमयी निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानन्दरूप आनन्दानुभूतिमात्र स्वसंवेदन ज्ञान से गम्य हूँ, अन्य उपायों से गम्य नहीं हूँ। मैं सर्व विभाव परिणामों से रहित शून्य हूँ, ऐसा—तीन लोक, तीन काल में मन-वचन-काय के द्वारा, कृत-कारित-अनुमोदना के द्वारा शुद्ध निश्चय से ऐसा मैं आत्माराम हूँ तथा सभी जीव ऐसे हैं—ऐसी निरन्तर भावना करनी चाहिए।

निकलंक : अहो! ऐसी परमात्म-भावना में लीन सन्तों को कितना आनन्द आता होगा।

अकलंक : अहा, उसकी क्या बात! जब सम्यग्दर्शन का आनन्द भी सिद्ध भगवान जैसा अपूर्व है, जिसे आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की उपमा नहीं दी जा सकती, तो फिर मुनिदशा के आनन्द की क्या बात?

निकलंक : भाई! बलिहारी है अपने जैनधर्म की, उसके सेवन से ऐसे अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है।

अकलंक : बन्धु! बात तो ऐसी ही है। वास्तव में एकमात्र जैन-शासन ही इस जगत के जीवों को शरणभूत है, लेकिन....

निकलंक : कहो न भाई! बोलते-बोलते कैसे रुक गये और किसकी चिन्ता में पड़ गये?

अकलंक : बन्धु! क्या कहूँ? अन्य चिन्ता तो हमें क्या हो? जीवन में केवल एक ही चिन्ता है कि जैन-शासन का जन-जन में प्रचार किस प्रकार हो? जगत्-कल्याणकारी जैन-शासन की वर्तमान हालत मुझसे नहीं देखी जाती। इस समय भारत में जगह-जगह अन्य धर्म का जोर चल रहा है, जैनधर्म तो भाग्य से ही कहीं दिखाई देता है, इसलिए इस समय तो जैनधर्म के प्रचार की ही खास चिन्ता है।

निकलंक : हाँ भाई! मुझे तो जैनधर्म के प्रचार की बहुत ही भावना होती है, अतः आप कोई ऐसा उपाय सोचो कि जिससे भारतवर्ष में जैनधर्म का महान प्रभाव फैल जाए।

अकलंक : बन्धु! मुझे एक युक्ति सूझी है और फिर पिताजी

ने भी जैन-शासन के लिये जीवन-बलिदान की आज्ञा दे ही दी है, इसलिए अब अपना रास्ता बहुत ही सुगम होगा।

निकलंक : कहो भाई! कहो, वह युक्ति कौन-सी है ?

अकलंक : सुनो भाई! इस समय भारत भर में बौद्ध धर्म का बहुत बोलबाला है, इसलिए पहले तो हमें बौद्धधर्म के शास्त्रों का गहन अध्ययन करना पड़ेगा, उसके बाद ही हम उनकी भूल खोजकर उसका खण्डन कर सकेंगे।

निकलंक : परन्तु भाई! ये बौद्धधर्मवाले लोग हम जैनों को कुछ अध्ययन आदि नहीं कराते हैं।

अकलंक : इसका भी उपाय मैंने सोचा लिया है। सुनो!

(कान में कुछ कहता है।)

निकलंक : वाह, बहुत ही सुन्दर उपाय है, धन्य है भैया आपकी बुद्धि को।

अकलंक : अब अपने कार्य की सिद्धि के लिये हमें जल्दी ही यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए।

निकलंक : हाँ, परन्तु जाने से पहले हमें यह बात पिताजी को बता देनी चाहिए, अन्यथा वे हमें ढूँढ़ने लगेंगे।

अकलंक : तुम्हारी बात ठीक है। चलो, हम पिताजी की आज्ञा लेने चलते हैं।

(पिताजी प्रवेश करते हैं।)

निकलंक : लो, पिताजी स्वयं आ पहुँचे।

(दोनों भाई हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं।)

अकलंक : पिताजी! जैनशासन की सेवा के लिये हम देशान्तर

जा रहे हैं। आप हमारी कुछ भी चिन्ता नहीं करना। हम अपने सर्वस्व-बुद्धि, शक्ति, ज्ञान, वैराग्य, तन, मन, धन, वचनादि से जैन-शासन की सेवा करेंगे और जैनधर्म के झण्डे को विश्व के गगन में फहरायेंगे। जिनेन्द्र भगवान हमारे जीवन में साथीदार हैं।

पिताजी : धन्य है पुत्रो! तुम्हारी भावना को। जाओ, खुशी से जाओ। तुम अपनी योजना में सफल होओ और जैनधर्म का जय-जयकार कराओ, ऐसा मेरी आशीर्वाद है। तुम्हारी शक्ति के ऊपर मुझे विश्वास है और तुम अवश्य अपने कार्य में सफल होओगे। जिनेन्द्र भगवान तुम्हारा कल्याण करें।

(दोनों पुत्र नमस्कार करके जाते हैं और सभी एकसाथ बोलते हैं।)

सब : बोलिए, जैनधर्म की जय!

चौथा दृश्य
नालन्दा के बौद्ध विद्यापीठ में

(नालन्दा बौद्ध विद्यापीठ का दृश्य है। घण्टी बजते ही आठ-दस बालक पुस्तक लेकर आते हैं। थोड़ी देर में उनके गुरु भी आ जाते हैं। बालक खड़े होकर विनय करते हैं। सारे बालक एक साथ बोलते हैं।)

बुद्धं शरणं गच्छामि।

धम्मं शरणं गच्छामि।

संघं शरणं गच्छामि।

(तीन बार बोलते हैं।)

गुरु : हे शिष्यो! अपना धर्म श्रेष्ठ है। उसकी उपासना से जीव मोक्ष प्राप्त करता है। इस जगत में सब अनित्य है। सभी वस्तुएँ सर्वथा अनित्य होने पर भी कितने ही लोग भ्रम से वस्तु को नित्य मानते हैं, परन्तु अपना बौद्धधर्म एकान्त क्षणिकवादी है। सब ही क्षणिक है—ऐसा समझकर उससे विरक्त होना, यही अपने धर्म का उपदेश है।

(अकलंक-निकलंक शिष्यों के वेश में आते हैं। आकर गुरु को नमस्कार करते हैं।)

गुरु : आओ बालको! कहाँ से आए हो ?

अकलंक : महाराज! हम सौराष्ट्र देश से आ रहे हैं।

गुरु : बालको! इतनी दूर से यहाँ किसलिए आए हो ?

निकलंक : स्वामीजी! हमने इस विद्यापीठ की बहुत प्रशंसा सुनी है, इसलिए इस विद्यालय में रहकर आपके पास आपके धर्म

का अभ्यास करने आये हैं। अतः आप हमें अपने इस विद्यालय में प्रवेश दीजिए और अपने धर्म का अभ्यास कराइये।

गुरु : बालको! तुम जिनधर्मी तो नहीं हो न? क्योंकि जैनों को हम इस विद्यालय में पढ़ाते नहीं हैं।

अकलंक : नहीं, महाराज! हम तो बौद्धधर्म का अभ्यास करने आये हैं।

गुरु : अच्छा! बहुत अच्छा!! परन्तु तुम बौद्धधर्म के सूक्ष्म सिद्धान्तों को समझ तो सकोगे?

निकलंक : अवश्य महाराज! ये मेरे बड़े भाई तो महा बुद्धिमान और एकपाठी हैं—केवल एक बार सुनने से इन्हें सब याद रह जाता है।

अकलंक : और मेरे छोटे भाई भी बहुत बुद्धिमान हैं। मात्र दो बार सुनने से इनको सब याद रह जाता है।

गुरु : ठीक है, खुशी से यहाँ रहकर पढ़ो; परन्तु याद रखना कि कभी भी जैनधर्म का पक्ष करोगे तो फाँसी ही दी जाएगी—ऐसा इस विद्यालय का नियम है।

अकलंक : ठीक है गुरुजी! हम आपके नियमों का पालन करेंगे।

गुरु : जाओ कक्षा में बैठो।

(अकलंक-निकलंक कक्षा में जाकर बैठते हैं और सबके साथ बोलते हैं।)

बुद्धं शरणं गच्छामि।

धम्मं शरणं गच्छामि।

संघं शरणं गच्छामि।

(अकलंक और निकलंक विद्यापीठ में रहकर पूरी लगन और निष्ठा से अध्ययन में जुट गये, अल्पसमय में ही उन्होंने सभी शास्त्रों का, संस्कृत भाषा का गहरा अध्ययन कर लिया। अब उनकी शिक्षा पूर्णता की ओर ही थी कि एक दिन....।)

गुरु : सुनो विद्यार्थियो! आज मैं तुमको जैनधर्म का प्रकरण समझाता हूँ और उसमें क्या भूल है—यह बतलाता हूँ। अपने धर्म के अनुसार इस जगत में सब सर्वथा क्षणभंगुर अनित्य ही है, लेकिन जैन लोग वस्तु को नित्य मानते हैं और फिर उसे अनित्य भी मानते हैं। देखो, उनके इस शास्त्र में लिखा है कि 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति' अर्थात् जीव है, जीव नहीं है।

एक विद्यार्थी : ऐसा कहने का क्या कारण है ?

गुरु : कारण दूसरा क्या होगा ? बस अज्ञान।

दूसरा विद्यार्थी : परन्तु गुरुजी! 'जीव है' ऐसा कहते हैं और फिर साथ में ही 'जीव नहीं है', ऐसा भी कहते हैं, ऐसी सीधी-सादी बड़ी भूल जैन कैसे कर सकते हैं ? जैन तो बहुत बुद्धिवाले माने जाते हैं। तब 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति' ऐसा कहने में उनकी कोई अपेक्षा तो होगी, केवल हमें भ्रम में डालने के लिये तो ऐसा नहीं कहा है।

तीसरा विद्यार्थी : महाराज! 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति' का अर्थ क्या है ?

गुरु : (क्रोधित होकर) 'जीवः अस्ति' अर्थात् जीव है और 'जीवः नास्ति' अर्थात् जीव नहीं है।

चौथा विद्यार्थी : 'जीव है और जीव नहीं है।' इसका मतलब क्या ?

गुरु : (झुंझलाकर) माथा पचा दिया । इस समय मेरा सिर दुख रहा है, कल समझाऊँगा ।

(गुरु सिर में हाथ देकर कक्षा में से चले जाते हैं । विद्यार्थी भी एक-एक करके चले जाते हैं । अन्त में अकलंक और निकलंक बच जाते हैं ।)

अकलंक : भाई ! गुरु किसलिए भाग गये, इसका तुझे पता है ?

निकलंक : हाँ, पता है, उनक सिर दुख रहा था ।

अकलंक : नहीं, नहीं । सिर दुखने का तो बहाना था । वास्तव में तो जैन सिद्धान्त का अर्थ वे स्वयं ही समझ नहीं पा रहे थे, इसलिए झुंझलाकर चले गये । यहाँ आओ, मैं तुमको उनकी भूल समझाता हूँ ।

(दोनों गुरु की मेज के पास जाकर पुस्तक देखते हैं ।)

अकलंक : इसे पढ़ो, यह क्या लिखा है ?

निकलंक : 'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति ।' भाई ! इसमें 'स्यात्' शब्द तो छूट ही गया है ।

अकलंक : शाबाश ! यहाँ 'स्यात्' शब्द न होने के कारण ही गुरु उलझन में पड़ गये और इसी वजह से वे सिरदर्द का बहाना बनाकर चले गये हैं ।

निकलंक : तो भाई आओ ! हम यहाँ 'स्यात्' शब्द लिखकर उनका सिरदर्द मिटा देते हैं ।

अकलंक : हाँ चलो, ऐसा ही करते हैं, परन्तु यह बात बहुत ही गुप्त रखना, यदि हम पकड़े गये तो जान का खतरा है ।

(पुस्तक में 'स्यात्' शब्द लिखकर चुपचाप चले जाते हैं । थोड़ी

ही देर में पाठशाला की घण्टी बजती है। विद्यार्थी आते हैं। पीछे से गुरु आते हैं। विद्यार्थी उन्हें सम्मान देते हुए खड़े हो जाते हैं।)

(फिर सभी इकट्ठे होकर अपना पाठ दोहराते हैं।)

गुरु : शिष्यो ! आज हमको कल के जैनधर्म का शेष प्रकरण सीखना है।

अकलंक : गुरुजी ! आज आपका सिर तो नहीं दुख रहा है न ?

गुरु : नहीं, आज तो ठीक है। (गुरु पुस्तक खोलकर पढ़ते हैं)
'जीवः अस्ति, जीवः नास्ति।' (चौंककर पुनः पढ़ते हैं।) अरे ! इसमें तो 'स्यात्' शब्द लिखा है:—'जीवः स्यात् अस्ति, जीवः स्यात् नास्ति।'

एक शिष्य : 'स्यात्' का अर्थ क्या होता है ? गुरुजी !

गुरु : 'जीवः स्यात् अस्ति' अर्थात् जीव किसी अपेक्षा से अस्तिरूप है और 'जीवः स्यात् नास्ति' अर्थात् जीव किसी अपेक्षा से नास्तिरूप है।

दूसरा शिष्य : वाह, आज तो अच्छी तरह अर्थ समझ में आ गया।

गुरु : सही बात है। कल 'स्यात्' शब्द रह जाता था, इसलिए अर्थ में गड़बड़ होती थी, परन्तु अब तो 'स्यात्' शब्द आ जाने से अर्थ समझ में आता है। जैन कहते हैं कि 'जीव स्यात् नित्य है और स्यात् अनित्य है'—इस प्रकार वे एक ही वस्तु को नित्य भी और अनित्य भी कहते हैं। सभी की समझ में आया ?

शिष्य : (सिर हिलाकर) जी हाँ, जी हाँ।

(घण्टी बजती है। सारे शिष्य जाते हैं। गुरु महाराज अकेले विचारमग्न बैठे हैं।)

गुरु : अरे, गजब हो गया। इस पुस्तक में 'स्यात्' शब्द आया कहाँ से? (पुस्तक के ऊपर हाथ पटककर) अवश्य किसी जैन का ही यह काम है। मैं भी जिस शब्द को नहीं समझ सका और जिसका मेल मिलाने के लिये मेहनत करते-करते मेरा सिर दुख गया और फिर भी मैं उसकी सन्धि नहीं मिला सका, वह सन्धि मात्र एक 'स्यात्' शब्द लिखकर किसी जैन विद्यार्थी ने मिला दी है। अवश्य यह कोई अत्यन्त बुद्धिमान है। इसके सिवाय दूसरे का यह काम हो ही नहीं सकता, अवश्य इस विद्यालय में कपट से हमारा वेश धारण करके कोई जैन घुस आया है। खैर, कोई परेशानी की बात नहीं है, मैं किसी भी उपाय से पकड़कर उसे फाँसी पर चढ़ाऊँगा।

(जोर से) सिपाही ! ओ सिपाही !!

सिपाही : जी साहब !

गुरु : जाओ ! तुरन्त इसी समय इन्स्पेक्टर को बुलाकर लाओ।

(सिपाही जाता है, थोड़ी ही देर में इन्स्पेक्टर आता है।)

इन्स्पेक्टर : नमस्ते महाराज ! फरमाइये, इस सेवक को क्या आज्ञा है ?

गुरु : देखो ! अपने विद्यालय में चोरी-छिपे कोई जैन घुस आया है, उसे हमें किसी भी उपाय से पकड़ना है।

इन्स्पेक्टर : परन्तु स्वामीजी ! हम उसे कैसे पहचानेंगे ?

गुरु : मैंने उसके लिए एक-दो युक्तियाँ सोच रखी हैं और तुम भी उसे पकड़ने की युक्ति में रहना।

इन्स्पेक्टर : जैसी आज्ञा !

(इंसपेक्टर जाता है। दृश्य बदलता है। विद्यार्थी कक्षा में पढ़ रहे हैं। गुरुजी वेगपूर्वक आकर क्रोध से कहते हैं।)

गुरु : चुप रहो! सुनो!! कल इस पुस्तक में जैनधर्म के प्रकरण में 'स्यात्' शब्द नहीं था और उसे बाद में किसी ने लिखा है। जल्दी बताओ कि यह शब्द किसने लिखा है ?

(सारे विद्यार्थी भय से गुपचुप बन जाते हैं।)

गुरु : (उग्रता से) बोलो! तुम में से कोई बोलता क्यों नहीं है ?

विद्यार्थी : (सारे एक साथ) हमें कुछ मालूम नहीं है।

गुरु : यह शब्द तुम में से ही किसी ने लिखा है। जिसने भी लिखा हो, वह सीधे तरीके से मान ले, अन्यथा मैं कठोर व्यवहार करूँगा।

(कोई बोलता नहीं है, थोड़ी देर में पहले विद्यार्थी की ओर देखकर गुरुजी पूछते हैं।)

गुरु : बोल, तूने यह लिखा है ?

विद्यार्थी : जी नहीं, मैंने नहीं लिखा और किसने लिखा है ? यह भी मैं नहीं जानता।

गुरु : (दूसरे विद्यार्थी से) बोल, तूने लिखा है ?

विद्यार्थी : जी नहीं।

(इसी प्रकार शेष सभी विद्यार्थियों से पूछते हैं, सारे विद्यार्थी 'जी नहीं' ऐसा कहते हैं। अन्त में अकलंक से पूछते हैं।)

गुरु : बोल अकलंक! तूने यह लिखा है ?

अकलंक : जी नहीं, मैंने नहीं लिखा है और किसने लिखा है ? यह भी मैं नहीं जानता।

गुरु : (क्रोधित होकर) मैं जानता हूँ कि कोई जैन विद्यार्थी यहाँ गुप्तरूप से घुस आया है, परन्तु मैं उसको पकड़कर ही रहूँगा। मन्त्रीजी ! यहाँ आओ।

मन्त्री : जी महाराज !

गुरु : जाओ, एक जिनप्रतिमा मँगवाओ और फिर उसे रास्ते के बीच में रखकर प्रत्येक विद्यार्थी को एक-एक करके मूर्ति को लांघने के लिए कहो। जो विद्यार्थी उस मूर्ति को न उलंघे, उसे मेरे पास पकड़कर लाओ; क्योंकि जो सच्चा जैन होगा, वह जिनप्रतिमा को कभी नहीं लांघेगा।

मन्त्री : जैसी आज्ञा !

(मन्त्री अन्दर जाकर थोड़ी देर में लौट आता है।)

मन्त्री : महाराज ! आपकी आज्ञानुसार मूर्ति रख दी है। अब एक-एक करके विद्यार्थियों को भेजिए और आप स्वयं भी देखने के लिए चलिए।

गुरु : हाँ, चलिए। विद्यार्थियों ! तुम भी एक-एक करके अन्दर आओ और जिनप्रतिमा को लांघकर आगे निकलो।

(गुरु अन्दर जाते हैं। पीछे से एक के बाद एक शिष्य जाता है। अन्त में अकलंक और निकलंक दो ही शेष रहते हैं।)

निकलंक : (करुण होकर) भाई ! अपने ऊपर बड़ा भारी धर्मसंकट आ पड़ा है। अब हम क्या करें ? जिनेन्द्र भगवान अपने इष्टदेव हैं। उनकी प्रतिमा का उल्लंघन अपने से कैसे हो सकता है ? प्राण जाए तो भी ऐसा नहीं हो सकता। किन्तु यदि ऐसा नहीं करेंगे तो अभी इसी समय हम इन गुरु के हाथों पकड़े जाकर मृत्यु

प्राप्त करेंगे और जैन-शासन की सेवा की अपनी भावना अधूरी ही रह जाएगी और फिर इस समय विशेष विचार का समय भी नहीं है, क्योंकि अब तुरन्त मूर्ति को लांघने की हमारी बारी आ रही है।

अकलंक : (निकलंक के ऊपर हाथ रखकर) भाई ! प्राण जाए तो भी अपने इष्टदेव जिनेन्द्र भगवान की अविनय नहीं करनी चाहिए—यह तुम्हारी भावना देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। तुम अपनी इस भावना में अडिग रहना। जिनेन्द्र भगवान अपने जीवनसाथी हैं।

निकलंक : परन्तु भाई ! मुझे चिन्ता हो रही है कि अब अपना क्या होगा ? आप उत्पादादिक बुद्धिवाले हैं। अतः इस समय कोई युक्ति खोजकर निकालिए।

अकलंक : (थोड़ी देर विचार करके) भाई ! तुम निश्चिन्त रहो, मुझे उपाय सूझ गया है। (गले में से जनेऊ निकालकर) देखो, यह जनेऊ ! जब अपनी बारी आयेगी, तब इस मूर्ति पर यह जरेऊ डालकर उसे परिग्रहवाली कर लेना अर्थात् यह मूर्ति जैनमूर्ति नहीं रहेगी और फिर हम इसे निशंकरूप से लाँघकर निकल जाएँगे।

निकलंक : बहुत अच्छा भाई ! धन्य है आपकी बुद्धि को।

(अन्दर से आवाज आती है।)

अकलंक-निकलंक ! ओ अकलंक-निकलंक !!

अकलंक : चलो भाई ! अपनी बारी आ गयी। (दोनों अन्दर जाते हैं। थोड़ी देर में अन्दर का पर्दा खुलता है। वहाँ एक मूर्ति या चित्र पर जनेऊ पड़ी हुई दिखायी देती है। तुरन्त पर्दा गिरता है। थोड़ी देर में पर्दा खुलता है और गुरु तथा मंत्री चिन्तामग्न बैठे हुए दिखायी देते हैं।)

मन्त्री : महाराज ! एक-एक विद्यार्थी मूर्ति को लाँघकर चला गया है, इसलिए इनमें कोई जैन हो—ऐसा नहीं लगता ।

गुरु : नहीं, मन्त्रीजी ! सम्भव है कि पकड़े जाने के डर से वह जैन विद्यार्थी मूर्ति को लाँघ गया हो, इसलिए आज रात में एक नयी परीक्षा करना चाहता हूँ और उसमें जो जैन होगा, वह अवश्य पकड़ा जाएगा ।

मन्त्री : ऐसी वह कौन-सी युक्ति है गुरुजी !

गुरु : सुनिए मन्त्रीजी ! मनुष्य जिस समय नींद में से घबराकर जागता है, उस समय उसके मुख से सहज ही अपने इष्टदेव का नाम निकलता है, इसलिए मैंने एक ऐसी योजना बनायी है कि आज रात्रि में प्रत्येक विद्यार्थी के कमरे के पास गुप्त रूप से एक-एक चौकीदार बैठा दिया जाए और जब सारे विद्यार्थी नींद में हो, तब अचानक भयंकर कोलाहल किया जाए । ऐसा होने पर सारे विद्यार्थी घबराकर जाग उठेंगे और अपने इष्टदेव का नाम बोलने लगेंगे । उनमें हमारे धर्मानुयायी विद्यार्थी तो हमारे भगवान का नाम बोलेंगे, परन्तु जो विद्यार्थी जैन होगा, वह हमारे भगवान का नाम नहीं बोलेगा, अपितु उसके इष्टदेव अरहन्त का नाम बोलेगा और इस तरह वह पकड़ में आ जाएगा, अतः इस योजना की सारी व्यवस्था आप गुप्तरूप से शीघ्र ही कर लीजिए ।

मन्त्री : जैसी आज्ञा महाराज !

(मन्त्री जाता है । पर्दा गिरता है ।)

पाँचवाँ दृश्य आपत्ति... और बलिदान

(रात्रि का दृश्य। दो खाटें बिछी हुई हैं। अकलंक-निकलंक बैठे हैं और बातचीत कर रहे हैं।)

निकलंक : भाई! हमारी युक्ति तो सही-सही पूरी हो गयी है, परन्तु अब हमें बहुत सावधानी से रहना पड़ेगा, क्योंकि गुरु को जैनों की गन्ध आ गयी है, इसलिए उसे पकड़ने के लिये वह आकाश-पाताल एक कर देंगे।

अकलंक : भाई! अभी जिन-शासन का पुण्य तप रहा है, जिनेश्वरदेव के प्रताप से हमें कुछ भी बाधा नहीं आयेगी। चलो, हम अपने-अपने मन में जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करके सो जाएँ।

(दोनों हाथ जोड़कर थोड़ी देर स्तुति करते हैं, बाद में सो जाते हैं, अंधेरा होता है। काले वेश में एक गुप्तचर आकर चुपचार इनके कमरे के पास बैठ जाता है। थोड़ी देर में अचानक एक जोरदार धमाके का कोलाहल होता है। पर्दे में से विद्यार्थियों का शोर सुनायी देता है। अकलंक-निकलंक भी चौंककर जाग जाते हैं 'अरहन्त-अरहन्त' बोलने लगते हैं।)

निकलंक : क्या हुआ भाई! एकाएक यह क्या हुआ ?

गुप्तचर : दुष्टो! तुमने अरहन्त का नाम बोला, इससे मैं समझ गया हूँ कि तुम जैन हो। चलो गुरु के पास। अभी वे तुम्हारी खबर लेंगे।

(दोनों को पकड़कर ले जाते हैं। गुरु बैठे हैं। वहाँ गुप्तचर अकलंक-निकलंक को लेकर आते हैं।)

गुप्तचर : महाराज! जिस समय कोलाहल हुआ था, उस समय ये दोनों विद्यार्थी अरहन्त का नाम ले रहे थे, इसलिए मैं इनको आपके पास ले आया हूँ।

गुरु : (हंसकर) वाह रे, अकलंक-निकलंक! तुम पढ़ने में तो बहुत चतुर हो। सच बताओ तुम कौन हो? तुम जैन हो?

अकलंक : महाराज, आपकी बात सत्य है। अब जब भेद खुल ही गया है तो हमें भी कुछ छिपाना नहीं है। हम जैन ही हैं और अरहन्तदेव के परम भक्त हैं।

गुरु : देखो बालको! जो हो गया, सो हो गया। अभी भी तुमको बचने का एक उपाय बतात हूँ। यदि तुम जैनधर्म छोड़कर बौद्धधर्म अंगीकार करने को तैयार हो जाओ तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, अन्यथा तुमको मृत्युदण्ड की सजा दूँगा।

निकलंक : देह जाए तो भले ही जाए, परन्तु हम अपने प्रिय जैनधर्म को कभी भी नहीं छोड़ेंगे। जैनधर्म हमें प्राणों से प्यारा है। 'सिर जावे तो जावे मेरा जैनधर्म नहीं जावे' विश्व के किसी भी भय से डरकर हम अपने जैनधर्म को छोड़नेवाले नहीं हैं। जैनधर्म की लिये ये प्राण जाएँ या रहें, इसकी हमें चिन्ता नहीं है।

गुरु : ठीक है। जाओ गुप्तचर! इस समय तो इन दोनों को जेल में डाल दो और सारी रात वहाँ कठोर पहरा रखना। प्रातःकाल होते ही राजा की आज्ञा लेकर इनको फाँसी पर लटका देंगे।

(गुप्तचर दोनों को ले जाता है और जेल में डाल देता है। जेल के अंधेरे में दोनों भाई बातचीत कर रहे हैं, बाहर पहरेदार खड़े हैं।)

निकलंक : भैया! हम बहुत कठिन परिस्थिति में पड़ गये हैं। अब इसमें से निकलना बहुत कठिन है।

अकलंक : धैर्य रखो भाई, धैर्य रखो ! जिनेन्द्र भगवान अपने जीवन में सदा सहयोगी हैं। जैन-शासन का प्रभाव अभी तप रहा है, इसलिए अवश्य ही प्रकृति हमारी सहायता करेगी।

निकलंक : अहो भैया ! ऐसे महा संकट के प्रसंग में भी आप ऐसा महान धैर्य रख सकते हो। यह महा आश्चर्य की बात है।

अकलंक : भाई ! जैन-शासन की कोई ऐसी अचिन्त्य महिमा है कि सुख में हो या दुःख में हो, वह सभी प्रसंगों में जीव को शरणभूत है।

निकलंक : अहो ! जैन-शासन के लिये हमने अपना जीवन समर्पित किया, जैन-शासन के खातिर हम घरबार छोड़कर यहाँ आये, जैन-शासन के लिये ही जान जोखिम में डालकर यहाँ विद्याध्ययन किया और अब जैन-शासन के प्रचार की हमारी भावना क्या अधूरी ही रह जाएगी ?

अकलंक : भाई ! इस समय यह बात और यह दुःख भूल जाओ। अब तो बस अन्तर की आराधना करो और ऐसी समाधि की भावना भाओ कि कदाचित् इस उपद्रव के प्रसंग में अपनी मृत्यु हो जाए तो हमारे अन्न-पानी का त्याग है और यदि इस संकट से छूट गये तो हमारा सारा जीवन जैनधर्म के लिये समर्पित है।

निकलंक : हाँ भाई ! आपकी बात उत्तम है। मैं भी ऐसी प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक इस संकट से नहीं उबरेंगे, तब तक आहार-पानी का त्याग है और यदि इससे छूट गये तो हमारा सम्पूर्ण जीवन जैनधर्म की सेवा हेतु समर्पित है।

पहला पहरेदार : अरे ! ये राजकुमार जैसे धर्म के प्रेमी दोनों

बालक कितने प्रिय हैं—एसे निर्दोष बालकों को प्रातःकाल प्राण-दण्ड दिया जाएगा। अरे... कुदरत कैसी है!

दूसरा पहरेदार : भैया! हमें भी बहुत दुःख हो रहा है, किन्तु हम इसमें क्या कर सकते हैं।

निकलंक : भैया! मुझे एक स्तुति बोलने की इच्छा हो रही है।

अकलंक : बोलो भाई! खुशी से बोलो! मैं भी तुम्हारे साथ बोलूँगा।

(दोनों बहुत ही वैराग्य भाव से स्तुति बोलते हैं।)

मेरा धर्मसेवा का भाव, प्रभुजी पूरा करना आज।
मेरा भव का बन्धन तोड़, आशा पूरी करना नाथ।।टेक।।
शासन सेवा की प्रीति जागी, भव-उद्धारक वीणा बाजी।
फरके जैनधर्म की ध्वज, अवसर ऐसा देना नाथ।।1।।
सब मिथ्यात्वी धर्म तजूँ मैं, अनेकान्त के पाठ पढ़ूँ मैं।
गाजे जैनधर्म का नाद, आशा पूरी करना नाथ।।2।।

अकलंक : भाई! धर्मसेवा की तुम्हारी भावना सुनकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। अब मुझे भी एक भावना हो रही है, जो कि दिन-रात भाने जैसी है, सुनो!

दिन-रात मेरे स्वामी! मैं भावना यह भाऊँ।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊँ।।टेक।।
शत्रु अगर कोई हों, सन्तुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धरके, सबसे क्षमा कराऊँ।।1।।
त्यागूँ आहार-पानी, औषधि विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में धारूँ।।2।।

जागे नहीं कषायें, नहिं वेदना सताये।
 तुमसे ही लौं लगी हो, दुर्ध्यान को हटाऊँ ॥3 ॥
 आत्मस्वरूप चिंतन, आराधना विचारूँ।
 अरहंत सिद्ध साधु, रटना यही लगाऊँ ॥4 ॥
 धर्मात्मा निकट हों, चर्चा धर्म सुनावें।
 वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ ॥5 ॥
 जीने की हो न वांछा, मरने की हो न इच्छा।
 परिवार मित्र जन से, मैं मोह को भगाऊँ ॥6 ॥
 भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमिरन।
 मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ ॥7 ॥
 सम्यक्त्व का हो पालन, हो अन्त में समाधि।
 'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ ॥8 ॥

(यह गायन सुनते-सुनते पहरेदार झूमने लगते हैं और फिर गहरी निद्रा में सो जाते हैं, नसकोरा बोलता है।)

निकलंक : भाई! चलो दुःख में परम शरणभूत और आनन्द निधान अपने चैतन्यस्वरूप का चिन्तन करते हैं।

अकलंक : हाँ चलो, उत्तम जीवन में यही वास्तव में करने योग्य है।

(दोनों भाई आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हैं। बाहर भी पूर्ण शान्ति है। पहरेदारों के खर्राटों की आवाज आ रही है।)

अकलंक : (निकलंक का हाथ पकड़कर) निकु! निकु! चलो, उठो! जल्दी करो! देखो! ये पहरेदार गहरी नींद में सो रहे हैं। हम इस जेल को लाँघकर शीघ्र ही निकल चलते हैं।

(पहले अकलंक जेल से निकल जाते हैं। फिर बाद में निकलंक को हाथ का सहारा देकर बाहर निकालते हैं। एक दूसरे के साथ हाथ मिलाकर दोनों भाई तेजी से भाग रहे हैं। इतने में पर्दा गिरता है, दृश्य बदलता है।)

गुरु : पहरेदारो ! जाओ अकलंक-निकलंक को जेल से लेकर यहाँ आओ।

पहरेदार : जैसी आज्ञा !

(पहरेदार जाते हैं और हाँफते-हाँफते लौटकर आते हैं।)

पहरेदार : महाराज ! महाराज ! वे दोनों तो जेल से भाग गये।

गुरु : अरे ! क्या कह रहे हो ? क्या वे भाग गये ? गजब हो गया। सिपाहियो ! जाओ ! उन दोनों को तुरन्त पकड़ो ! यदि वे पकड़ में नहीं आये तो हमारे धर्म को भारी नुकसान पहुँचायेंगे। मैं जानता हूँ कि केवल अकलंक में ही ऐसी सामर्थ्य है कि वह बड़े-बड़े सैकड़ों विद्वानों को पराजित कर सकता है। इसलिए चारों ओर सैनिकों को दौड़ाओ और कैसे भी उनको पकड़ो। यदि जीवित पकड़ में न आये तो प्रहार कर देना। जाओ ! जल्दी जाओ !

(अनेक सैनिक 'धम-धम' करते हुए जाते हैं। पर्दा गिरता है। दृश्य बदलता है। यहाँ अकलंक-निकलंक दौड़ते हुए भाग रहे हैं।)

अकलंक : चलो निकलंक ! जल्दी चलो ! जितना हो सके, उतना अधिक दूर निकल जाँ।

निकलंक : भाई ! जैनधर्म का प्रभाव है कि हम जीवित बच गये।

(पर्दे के पीछे से 'धम-धम' की आवाज आती है।)

अकलंक : भाई ! दूर देखो, सैनिक हमें पकड़ने के लिये आ

रहे हैं। वे बहुत उत्तेजित होंगे और क्रोधित होंगे, इसलिए हमें छोड़ेंगे नहीं। इस समय बचना मुश्किल है।

निकलंक : भैया! ऐसा करो, आप जल्दी भाग जाओ और मैं यहाँ खड़ा-खड़ा उन्हें रोके रखूँगा।

अकलंक : अरे भाई! क्या ऐसे संकट में तुझे छोड़कर मैं अकेला भाग जाऊँ।

निकलंक : भैया! मेरी अपेक्षा आप अधिक योग्य हो। जैन-शासन की सेवा मेरी अपेक्षा आप अधिक कर सकोगे। आप अपने जीवन के लिये नहीं, परन्तु जैन-शासन की सेवा के लिये जल्दी यहाँ से चले जाओ और मेरी चिन्ता छोड़ो। इस समय एक-एक समय कीमती है।

(‘धम-धम’ और ‘पकड़ो-पकड़ो’ की आवाजें आ रही हैं।)

अकलंक : परन्तु भाई! तू मेरा छोटा भाई है। तुझे मृत्यु के मुँह में छोड़कर अकेले मेरे पैर आगे कैसे बढ़ेंगे ?

निकलंक : भैया! मैं आपके चरणों में गिरकर फिर से प्रार्थना करता हूँ कि इस समय आप मेरे जीवन की नहीं, परन्तु जैन-शासन की रक्षा का विचार करो। जैन-शासन की रक्षा के लिये कदाचित् मेरे जीवन का बलिदान होगा तो मैं अपने जीवन को सफल मानूँगा। भाई। मेरा और तुम्हारा दोनों का जीवन जैन-शासन के लिये ही अर्पित किया हुआ है, इसलिए एक पल की भी देरी किये बिना जिनेन्द्र भगवान का नाम लेकर शीघ्रता से भाग जाओ। देखो! दूर गहरा सरोवर दिखाई देता है। वहाँ जाकर विशाल कमल के पत्ते के नीचे छिप जाओ और जीवन में जैन-शासन की विजय की ध्वजा फहराना। जाओ भाई! जल्दी जाओ!!

अकलंक : (करुण होकर) भाई ! मैं नहीं जाऊँगा । तू भाग जा और मैं यहाँ खड़ा होकर सैनिकों को रोके रखूँगा ।

निकलंक : (करुण होकर) भाई ! भाई !! जैन-शासन के लिये अब एक शब्द भी बोले बिना, अब एक पल भी गँवाये बिना आप शीघ्रता से भागो । इस समय सवाल मेरे या आपके जीवन का नहीं, अपितु जैन-शासन की रक्षा का है । अब विलम्ब करोगे तो हम दोनों पकड़ जायेंगे, इसलिए जल्दी जाओ । जैन-शासन की प्रभावना जितनी आप कर सकेंगे, उतनी मैं नहीं कर सकता, इसलिए जैन-शासन की सेवा के लिये आप अपना जीवन बचाओ । जाओ ! भाई, जल्दी जाओ !

(पर्दे में से सैनिकों की आवाज आती है:—वे जा रहे हैं । पकड़ो, पकड़ो ।)

अकलंक : (अत्यन्त करुण शब्दों में) भाई ! तू जैनधर्म का परम भक्त है । मैं मजबूर हूँ कि इस समय जैनधर्म के लिये तुझे अकेला छोड़कर मुझे जाना पड़ रहा है । भाई ! जिनेन्द्र भगवान तेरा कल्याण करें ।

(दोनों भाई बहुत ही स्नेहपूर्वक एक-दूसरे से गले मिलते हैं ।)

सिपाही : पकड़ो, दोनों को पकड़ लो, नहीं पकड़ में आयें तो प्रहार करो ।

निकलंक : जाओ भाई ! जल्दी करो !

(अकलंक भागने लगता है । भागकर सरोवर में छिप जाता है । निकलंक के पीछे सैनिक धमाधम करते दौड़ रहे हैं । निकलंक भागता-भागता घूमकर रंगभूमि के ऊपर आता है । वहाँ पर सामने से एक धोबी आ रहा है ।)

धोबी : अरे बाबा ! क्यों भागते हो ?

(निकलंक हाँफते हुए भागे जा रहे हैं, धोबी को कुछ भी उत्तर नहीं देते, धोबी उसके भागने का कारण जानने के लिये उसके पीछे दौड़ते हुए पुनः आवाज लगाकर उसे रोकना चाहता है, परन्तु निकलंक ने मानो कुछ सुना ही न हो..., वह तो भागता ही जा रहा है, उसके पीछे धोबी भी भागता जा रहा है।

उसके पीछे सैनिक, 'मारो-मारो' करते आ रहे हैं।

(धड़ाक-धड़ाक सैनिक पास में आकर दोनों पर प्रहार कर देते हैं।)

निकलंक : हा.... ! अरहन्त.... अरहन्त.... अ.....र.....

(प्राण-त्याग बलिदान)

सैनिक : चलो ! अपना काम पूरा हुआ। ये दोनों जीवित पकड़ में नहीं आ रहे थे, इसलिए इनको यहीं ढेर कर दिया। चलो ! अब जल्दी यह समाचार गुरु को सुनाते हैं।

(सैनिक जाते हैं। नीरव शान्ति छा जाती है। निकलंक और उस धोबी का मृत शरीर वहाँ पड़ा हुआ है। थोड़ी देर में अकलंक धीरे-धीरे शिथिल पैरों से वहाँ आते हैं, और अचानक निकलंक के शरीर के ऊपर नजर पड़ते ही 'हा निकलंक! निकलंक!! भाई! भाई!!' ऐसा उसे पुकारते हैं। थोड़ी देर तक गम्भीरता से उसकी ओर देखते रहते हैं और उसके बाद एकदम भरे हुए गले से बहुत ही वैराग्य एवं करुणा भाव से बोलते हैं।)

अकलंक : अहा ! जैनधर्म के लिये मेरे भाई ने हंसते-हंसते अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। अपने प्राण निकालकर इसने जैन-शासन में नये प्राण फूँक दिये। भाई ! जैन-शासन के लिये किया गया तुम्हारा बलिदान निष्फल नहीं जायेगा। अहो ! तुमने प्राणों से भी अधिक प्यारे जैन-शासन को समझा। तुम्हारा ऐसा

जैनधर्म का प्रेम परभव में भी तुम्हारा कल्याण करेगा और तुमको इस संसार-सागर से पार उतारेगा। भाई! तुमने अपने प्राणों का बलिदान देकर भी मुझे बचाया है तो अब मैं जैनधर्म की प्रभावना का हमारा कार्य अवश्य पूरा करूँगा। जिसने तुम्हारे प्राणों का बलिदान लिया है, उस एकान्त बौद्धधर्म को पराजित कर सम्पूर्ण भारत के गाँव-गाँव में, घर-घर में जैनधर्म का ध्वज फहराऊँगा। जब मैं सम्पूर्ण भारत के गाँव-गाँव में, घर-घर में जैनधर्म का ध्वज फहरता हुआ देख लूँगा, तब ही मेरी आत्मा को शान्ति होगी।

अरे! मेरे कारण इस राहगीर (धोबी के शव की ओर देखते हुए) का मरण व्यर्थ ही हो गया। भगवान इसकी आत्मा को शान्ति दें।

(अकलंक के इन उद्गारों का प्रेक्षक सभा ने तालियों की गड़गड़ाहट से अनुमोदन किया। साथ-साथ बलिदान के दृश्य से अनेक दर्शकों की आँखों में करुण रस की धारा बँध गई है। पर्दा धीरे-धीरे बन्द होता है और इस प्रकार अकलंक-निकलंक नाटक का 'बलिदान' नामक प्रथम अंक पूरा हुआ।)

द्वितीय अंक जिनशासन-प्रभावना

वन्दन हमारा प्रभुजी तुमको, वन्दन हमारा गुरुजी तुमको ॥
 वन्दन हमारा सिद्ध प्रभु को, वन्दन हमारा अरहन्तदेव को ॥
 वन्दन हमारा सब मुनियों को, वन्दन हमारा धर्मशास्त्र को ॥
 वन्दना हमारा ज्ञानीजनों को, वन्दन हमारा चैतन्यदेव को ॥
 वन्दन हमारा आत्मस्वभाव को, वन्दन हमारा आत्म भगवान को ॥

उपोद्घात : इस नाटक के पहले अंक में अकलंक-निकलंक की बाल्यावस्था, ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा, जैनशासन की सेवा की तमन्ना, बौद्धमत के विद्यापीठ में अध्ययन, 'स्यात्' शब्द सुधारना, पकड़े जाना, उसके बाद जेल से भाग जाना और भागते-भागते निकलंक का बलिदान हो जाना, इन दृश्यों का वर्णन हुआ। अब दूसरे अंक का नाम है 'प्रभावना'। निकलंक के बलिदान के समक्ष अकलंक ने बौद्धों को पराजित कर भारतभर में जैनधर्म का विजयध्वज फहराने की जो प्रतिज्ञा की थी, वह किस प्रकार पूरी होती है और जैनधर्म की कैसी महान प्रभावना होती है, उसका वर्णन इस दूसरे अंक में आयेगा।

(प्रारंभ में उज्जैन नगरी के राजदरबार का दृश्य है। उज्जैन के महाराजा के दो रानियाँ हैं। उनमें से एक जैनधर्म की अनुयायी है और दूसरी बौद्धधर्म की। नाटक में इन रानियों का अभिनय दिखाना कठिन होने से हमने रानियों के प्रतिनिध के रूप में उनके पुत्र जिनकुमार और अजिनकुमार को रख लिया है।)

पहला दृश्य

जैन रथयात्रा में रुकावट

(उज्जैन नगरी की राजसभा भरी हुई है। चार दरबारी बैठे हैं।)

छड़ीदार : सोने की छड़ी, चाँदी की मशाल, मोतियों की माल, नेक नामदार उज्जैन अधिपति महाराजा पधार रहे हैं।

(राजा प्रवेश करते हैं। दरबारी खड़े होकर उनका सम्मान करते हैं। राजा सिंहासन पर बैठते हैं।)

राजा : क्यों मन्त्रीजी ! क्या समाचार है ?

मन्त्री : महाराज ! इस समय तो जैनधर्म की अष्टाह्निका के दिन चल रहे हैं, इसलिए समूचे राज्य में जैनधर्म की बहुत आराधना, प्रभावना हो रही है।

राजा : हाँ, जिनकुमार प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक का गन्धोदक लाता है और मैं उसे मस्तक पर चढ़ाता हूँ। अब आज तो अन्तिम दिन है। राजकुमार गन्धोदक लेकर अभी आ ही रहे होंगे।

छड़ीदार : जैनधर्म के परमभक्त, जिनमती महारानी के पुत्र जिनकुमार पधार रहे हैं।

(राजकुमार आ रहे हैं। उनके हाथ में गन्धोदक का पात्र है।)

जिनकुमार : प्रणाम पिताजी ! लीजिए यह जिनेन्द्र भगवान का गन्धोदक।

(राजा खड़े होकर हाथ से गन्धोदक लेकर अपने मस्तक पर लगाते हैं।)

जिनकुमार : पिताजी ! आज अष्टाह्निका का उत्सव पूरा हो

रहा है और प्रतिवर्ष इस उत्सव की पूर्णता के हर्ष में मेरी माताजी जिनेन्द्र भगवान की महान रथयात्रा निकलवाती हैं; उसी प्रकार इस वर्ष भी वैसी ही भव्य रथयात्रा निकलवाने के लिए आपसे आज्ञा चाहती हूँ।

राजा : पुत्र! भगवान की रथयात्रा निकलवाने में मेरी आज्ञा कैसी? मैं तो भगवान का सेवक हूँ। हर्षपूर्वक रथयात्रा निकालो और सारी उज्जैन नगरी में घुमाकर धर्म की प्रभावना करो।

मन्त्रीजी! इस सुअवसर में सारी उज्जैन नगरी को सजाने का प्रबन्ध करो।

मन्त्री : जैसी आज्ञा महाराज!

नगरसेठ : अहो! प्रतिवर्ष महाराजा की जिनमती महारानी इस रथयात्रा को निकलवाती हैं, यह उज्जैन नगरी के लिए बहुत ही भव्य और आनन्द का प्रसंग है।

सेनापति : अरे, इस रथयात्रा को देखने के लिए तो देश-विदेश से लाखों श्रद्धालु इस उज्जैन नगरी में आते हैं।

खजांची : और इस अवसर पर तो अपने राज्य भण्डार से करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं का उपयोग भी होता है और रत्नजड़ित स्वर्णरथ में विराजमान जिनेन्द्र भगवान का अद्भुत वैभव देखकर नगरी के अनेक जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर जैनधर्म अंगीकार करते हैं।

राजा : निश्चित ही यह रथयात्रा तो उज्जैन नगरी की शोभा है।

छड़ीदार : अजिनमती महारानी के पुत्र अजिनकुमार पधार रहे हैं।

(अजिनकुमार तेजी से हांफते-हांफते प्रवेश करते हैं।)

अजिनकुमार : प्रणाम पिताजी ! मेरी माताजी अजिनमती प्रार्थना करती हैं कि हमारे बौद्धधर्म के महान आचार्य संघश्री उज्जैन नगरी में पधारे हुए हैं, इसलिए उनकी खुशहाली हेतु हमारे भगवान की एक विशाल रथयात्रा निकलवाने की हमारी भावना है, अतः आप हमें उसके लिये आज्ञा दीजिए।

राजा : बहुत अच्छा, पुत्र ! प्रसन्नता से से निकालो।

अजिनकुमार : परन्तु पिताजी ! मेरी माताजी ने साथ-साथ यह भी कहलवाया है कि जैनों की रथयात्रा तो प्रतिवर्ष निकलती ही है, अतः इस बार हमारा रथ पहले निकले और जैनों का रथ बाद में निकले—ऐसी आप आज्ञा देवें।

नगरसेठ : (आश्चर्य से) हैं ! हैं !! ऐसी कैसी प्रार्थना ?

जिनकुमार : (करुण होकर) पिताजी ! पिताजी !! इसमें तो जैनधर्म का अपमान होता है। आप आज्ञा मत दीजिएगा। मेरी माता जैनधर्म का अपमान नहीं सह सकेगी।

अजिनकुमार : (कटाक्ष से) हाँ ! और मेरी माता भी बौद्धधर्म का अपमान सहन नहीं कर सकेगी।

राजा : (सिर पर हाथ रखकर) यह तो बड़ी समस्या पैदा हो गयी। एक रानी जैनधर्म का पक्ष लेती है और दूसरी रानी बौद्धधर्म का पक्ष लेती है। मेरे लिये तो दोनों रानियाँ एक-सी हैं। अब मैं क्या करूँ ? इसका हल किस प्रकार खोजूँ ? मन्त्रीजी ! इसका कोई रास्ता निकालो।

मन्त्री : (थोड़ी देर विचार करके) महाराज ! इसका एक उपाय मुझे सूझता है।

राजा : क्या उपाय है, कहो! कहो!!

मन्त्री : देखिये! जैनधर्म और बौद्धधर्म—इन दोनों धर्मों के विद्वान इस राज्यसभा में पधारे और वाद-विवाद करें और वाद-विवाद में जो जीत जाए, उसका रथ पहले निकले।

राजा : वाह! अति उत्तम! बोलो राजकुमारो! तुम्हें यह मंजूर है।

जिनकुमार : जी हाँ महाराज! हम जैनों को यह बात मंजूर है।

राजा : बोलो! अजिनकुमार तुम्हें!

अजिनकुमार : महाराज! मैं मेरी माताजी से पूछकर आता हूँ।

राजा : हाँ, इसी समय पूछकर आओ।

(अजिनकुमार जाता है। थोड़ी देर में लौट आता है।)

अजिनकुमार : महाराज! मेरी माताजी को भी यह बात मंजूर है और हमारे बौद्धधर्म की ओर से आचार्य संघश्री स्वयं ही वाद-विवाद करेंगे।

राजा : बहुत अच्छा! और जिनकुमार! तुम भी तुम्हारी माता से पूछकर यह बताओ कि तुम्हारी ओर से वाद-विवाद में कौन खड़ा होगा।

जिनकुमार : जैसी आज्ञा!

राजा : मन्त्रीजी! तुम पूरी उज्जैन नगरी में मुनादी पिटवा दो कि कल राज्यसभा में जैनधर्म और बौद्धधर्म के विद्वानों के बीच वाद-विवाद का आयोजन किया गया है, उसे सुनने के लिये समस्त नागरिकों को राजदरबार में आने की अनुमति है।

मन्त्री : जैसी आज्ञा।

राजा : बस, आज की सभा यही समाप्त होती है।

दूसरा दृश्य

संघ की उलझन और अकलंक का आगमन

(जिनमनिदर में शास्त्रसभा चल रही है। संघपति वगैरह बैठे हुए हैं। एक के बाद एक श्रावक शास्त्र / पोथी लेकर आते हैं। तत्त्वार्थसूत्र पढ़ा जा रहा है। शुरुआत में सब एक साथ मंगलाचरण बोलते हैं:—)

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ।
मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

(संघपतिजी शास्त्र पढ़ते हैं)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥1 ॥

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन ॥2 ॥

अहो, चैतनयमूर्ति आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान ही भवसागर से तारनेवाला जहाज है। जो जीव दुःखमय संसार समुद्र में डूबना नहीं चाहते हैं और उसको तैरकर मोक्षपुरी में अनन्त सिद्ध भगवन्तों के धाम में जाना चाहते हैं, वे निरन्तर दिन और रात, क्षण-क्षण और पल-पल इस सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करें। सम्यग्दृष्टि को जैनधर्म की प्रभावना का परम उत्साह होता है। भगवान की रथयात्रा आदि महोत्सवों के द्वारा वह जैनधर्म की प्रभावना करता है। देखो! अपनी महारानी साहिबा जिनमती प्रतिवर्ष कितनी भव्ययात्रा निकालती हैं! कल भी ऐसी ही भव्य यात्रा निकलेगी, उसमें सब उत्साह से भाग लेना।

(जिनकुमार हाँफते-हाँफते आते हैं।)

संघपति : पधारो ! पधारो कुंवरजी ! आज अचानक कैसे पधारना हुआ ?

जिनकुमार : संघपतिजी ! मेरी माताजी ने एक विशेष संदेश देने के लिये मुझे आपके पास भेजा है।

संघपति : कहो, माताजी का क्या सन्देश है ?

जिनकुमार : आप सब जानते हैं कि प्रतिवर्ष हम जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा निकलाते हैं, परन्तु इस बार अजिनमती माता ने बीच में आकर हठ धारण कर लिया है कि जैनों का रथ पहले न निकले, उनके बौद्धधर्म का रथ पहले निकले।

सब (एक साथ) : (चौंककर) अरे ! फिर क्या हुआ ?

जिनकुमार : इसलिए महाराज साहब ने ऐसा निश्चित किया है कि जैनों और बौद्धों का राज्यसभा में वाद-विवाद हो और उसमें जो जीत जाए, उसी का रथ पहले निकले। हमने यह चुनौती स्वीकार कर ली है इसलिए अब कल बौद्धधर्मी आचार्य संघश्री के साथ वाद-विवाद कर सके—ऐसे किसी समर्थ विद्वान को अपनी ओर से तैयार करना है और इसलिए ही मेरी माताजी ने मुझे आपके पास भेजा है।

संघपति : अरे, यह तो जैन-शासन की प्रतिष्ठा का सवाल है।

जिनकुमार : जी हाँ ! इसीलिए मेरी माताजी ने प्रतिज्ञा की है कि जबतक बौद्ध गुरु को पराजित करके जैनों का रथ पहले चलवावे—ऐसा कोई विद्वान न आये, तब तक मैं आहार नहीं ग्रहण करूँगी और इस समय वे जिनमन्दिर में भगवान के सामने ध्यान में बैठी हैं।

सब (एक साथ) : अरे! अरे! महारानी ने ऐसी कठोर प्रतिज्ञा कर ली है।

संघपति : (उलझन के साथ) अरे! बौद्धों के संघश्री आचार्य महाविद्वान हैं और उनके सामने टिककर उनको पराजित कर सके ऐसा कोई विद्वान इस समय अपनी उज्जैन नगरी में नहीं हैं। अरे! अरे! महारानी ने तो कठोर प्रतिज्ञा लेकर अन्न-पानी भी त्याग दिया है। हम सब भी प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक महारानी अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगी, तब तक हमारे भी अन्न-जल का त्याग है।

(सब विचारमग्न बैठ जाते हैं। निस्तब्ध शान्ति छा जाती है। थोड़ी ही देर बाद आकाश में से से निम्न प्रकार की ध्वनि होती है:— 'धर्मबन्धुओं! चिन्ता मत करो। जैनधर्म की महान प्रभावना करे— ऐसे एक समर्थ विद्वान अभी तुम्हारी नगरी में आकर पहुँचनेवाले हैं।' यह आकाशवाणी सुनकर सब हर्षित हो जाते हैं।)

संघपति : अहो, देखो! देखो!! आकाश में से देवता भी जैनधर्म के विजय की भविष्यवाणी कर रहे हैं, इसलिए हमें अब चिन्ता छोड़कर महारानीजी को शीघ्र ही यह बधाई-सन्देश पहुँचाना चाहिए और उस प्रभावशाली विद्वान के महा-स्वागत की तैयारी करनी चाहिए।

श्रोता : हाँ चलो।

(सब अन्दर पर्दे के पीछे जाते हैं। बैण्ड बाजे सुनाई देते हैं। बाजे सहित स्वागत करते हुए अकलंक को मंच पर लाते हैं। अकलंक और संघपति उच्चासन पर बैठते हैं।)

संघपति : पधारिये विद्वान! पधारिये!! आप जैसे प्रभावशाली साधर्मी को देखकर हमें बहुत ही आनन्द हो रहा है, कृपया आप अपना परिचय देने की कृपा करें।

अकलंक : मेरा नाम अकलंक है। मैं अरहन्तदेव का परमभक्त हूँ। मान्यखेट नगरी के राजमन्त्री का मैं पुत्र हूँ। मेरे छोटे भाई का नाम निकलंक था। हम दोनों ने अपना सारा जीवन जैन-शासन की सेवा में समर्पित कर दिया था। मेरे भाई निकलंक का तो बौद्ध लोगों ने बलिदान ले लिया और अब जैन-शासन की सेवा का बाकी रहा काम पूरा करने के लिये मैं देश-विदेश में भ्रमण कर रहा हूँ। यहाँ आप सब साधर्मी भाईयों को देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। यहाँ का संघ सब प्रकार से कुशल तो है ?

संघपति : भाई! क्या बताऊँ ? अब तक तो हमारा संघ बड़ी भारी चिन्ता में था, परन्तु अब आपके पधारने से सारी चिन्ता दूर हो गई है।

अकलंक : ऐसी वह बड़ी भारी चिन्ता क्या थी ?

संघपति : सुनिये भाई! यहाँ कल जैनधर्म की महान रथयात्रा निकलनी है, लेकिन यहाँ की अजिनमती रानी ने हठ ठान लिया है कि पहले बौद्धधर्म का रथ निकलेगा, फिर जैनों का। अब राजा साहब के आदेशानुसार यदि संघश्री आचार्य को हम वाद-विवाद में जीत सकें तो ही अपनी रथयात्रा पहले निकल सकती है, परन्तु हमारी उज्जैन नगरी में ऐसा कोई विद्वान नहीं है कि जो बौद्ध गुरु को पराजित कर सके, इसलिए हम महान चिन्ता में पड़े हुए थे और महारानी सहित हम सबने अन्न-जल का त्याग कर दिया था। तभी आकाश से ऐसी आवाज करके जैनधर्म की भक्त देवी ने आपके आगमन की पूर्व सूचना दी, अब आपके जैसे समर्थ विद्वान के पधारने पर हमारी सारी चिन्ता दूर हो गई है। हमें पूर्ण

विश्वास है कि आप संघश्री आचार्य को वाद-विवाद में अवश्य जीत लेंगे और जैनधर्म के विजय का डंका बजायेंगे।

अकलंक : (उत्साह से छाती ठोककर) वाह ! वाह !! यह तो मेरा ही काम है। मैं तो ऐसे ही मौके की तलाश में था। बौद्ध के संघश्री आचार्य तो क्या, साक्षात् उनके भगवान भी आ जाएँ तो भी वे वाद-विवाद में टिक नहीं सकेंगे।

(सब हर्षपूर्वक एक साथ बोल उठते हैं:—वाह! वाह! बोलिए जैनधर्म की जय!!)

संघपति : ठीक ! तो फिर अपनी ओर से ये अकलंककुमार वाद-विवाद करेंगे—यह समाचार हम संघश्री को दे आते हैं।

अकलंक : बड़ी खुशी के साथ। मेरे छोटे भाई के बलिदान का बदला लेने का और जैनधर्म की महान प्रभावना का यह प्रसंग आया है। लाओ ! मैं स्वयं ही उनको पत्र लिख देता हूँ।

(पत्र लिखकर देते हैं।)

संघपति : (एक अन्य धन्यकुमार नामक व्यक्ति से) धन्यकुमार ! यह पत्र आचार्य संघश्री को दे आओ।

(वह जाकर थोड़ी देर में लौट आता है।)

संघपति : क्यों धन्यकुमार ! पत्र दे आये हो ?

धन्यकुमार : जी हाँ, ऐसा महान विद्वता-पूर्ण पत्र पढ़ते ही संघश्री आचार्य का मद तो चकनाचूर हो गया। संघपतिजी ! आप सब निश्चिन्त रहना, विजय तो अपनी ही होनी है।

संघपति : बोलिए, जैनधर्म की जय !

तीसरा दृश्य

वाद-विवाद... और बौद्ध गुरु की उलझन

(राज्यसभा में राजा, मन्त्री आदि बैठे हैं। एक तरफ से 'बोलिये! जैनधर्म की जय' ऐसे जय-जयकार के साथ अकलंककुमार अपनी मण्डली सहित प्रवेश करते हैं। दूसरी ओर संघश्री नाम के आचार्य अपनी मण्डली सहित अपने धर्म की जय-जयकार करते हुए प्रवेश करते हैं। नागरिक एक-एक करके आते हैं। सम्पूर्ण सभा-मण्डप में भीड़ हो जाती है।)

राजा : सभाजनों और प्रजाजनो! सुनो, आज इस सभा में बौद्धों और जैनों के विद्वानों के बीच वाद-विवाद हो रहा है। उसमें बौद्धमत के पक्ष की ओर से आचार्य संघश्री बोलेंगे और जैन पक्ष की ओर से मान्यखेट नगर के राजमन्त्री के विद्वान पुत्र अकलंककुमार बोलेंगे। इस वाद-विवाद को करते-करते जो योग्य जवाब नहीं दे सकेगा अथवा मौन हो जाएगा, वह पराजित समझा जाएगा। जो जीतेगा, उसकी रथयात्रा पहले निकलेगी। बस, अब चर्चा प्रारम्भ होती है, सब शान्ति से सुनिये।

संघश्री : बोलिये महानुभाव! आपके जैनधर्म का मूल सिद्धान्त क्या है?

अकलंक : हमारे जैनधर्म का मूल सिद्धान्त 'अनेकान्त' है।

संघश्री : अनेकान्त का क्या अर्थ है?

अकलंक : प्रत्येक वस्तु में अनेक धर्म रहते हैं, यही अनेकान्त है। परस्पर सापेक्ष अनेक धर्मों के द्वारा ही वस्तु की सिद्धि हो सकती है। सर्वथा एकान्त के द्वारा वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती।

संघश्री : एक ही वस्तु में परस्पर विरुद्ध दो धर्म कैसे हो सकते हैं ?

अकलंक : एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध धर्म एक वस्तु में नहीं रह सकते हैं, लेकिन कथंचित् विरुद्ध दो धर्म एक वस्तु में रहते हैं।

संघश्री : 'सर्वथा विरुद्ध' और 'कथंचित् विरुद्ध' का तात्पर्य क्या है ?

अकलंक : जैसे कि चेतनपना और अचेतनपना अथवा मूर्तपना एवं अमूर्तपना—ये एक-दूसरे से सर्वथा विरुद्ध हैं। ये दोनों धर्म एक वस्तु में नहीं रह सकते हैं। जो चेतन होता है, वह अचेतन नहीं होता। जो मूर्त है, वह अमूर्त नहीं होता, परन्तु नित्यपना और अनित्यपना—ये दोनों कथंचित् विरुद्ध धर्म हैं और ये दोनों एक ही वस्तु में एक साथ रह सकते हैं।

संघश्री : क्या नित्यपना और अनित्यपना, दोनों धर्म एक ही वस्तु में एक साथ रहते हैं ?

अकलंक : जी हाँ।

संघश्री : नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। एक वस्तु को नित्य कहना और उसी को फिर अनित्य कहना—यह तो 'स्ववचन बाधित' होगा।

अकलंक : जो एक आँख बन्द करके देखते हैं, उनको ही यह 'स्ववचन बाधित' जैसा लगता है, परन्तु जो दोनों आँखें खोलकर देखते हैं, उनको तो एक ही वस्तु नित्य और अनित्य ऐसे दो स्वरूप में स्पष्ट दिखाई देता है।

संघश्री : वाह ! एक ही वस्तु और स्वरूप दो ?

अकलंक : हाँ! एक ही वस्तु अनेक धर्मोंवाली है। जो वस्तु द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, वही वस्तु पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। सुनिये—

आत्मा द्रव्य अपेक्षा नित्य है... पर्याय अपेक्षा अनित्य.... ।
 बालकादि तीन का... ज्ञान एक को होय... ॥1 ॥
 क्रोधादिक तरतम्यता.... सर्पादिक की मांहि..... ।
 पूर्व जन्म संस्कार से..... जीव नित्यता होय ॥2 ॥
 अथवा क्षणिक ज्ञान को.... जो जाने कहनार... ।
 कहनेवाला क्षणिक नहीं.... कर अनुभव निरधार.... ॥3 ॥

संघश्री : नहीं, नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता।

अकलंक : महोदय, आपने तो कह दिया कि यह हो ही नहीं सकता, लेकिन क्यों?—यह आपने नहीं बताया। अतः आपके धर्म का क्या मत है, वह कहिये ?

संघश्री : हमारे धर्म का सिद्धान्त है कि जो जगत में दिखता है, वह सब क्षणिक है, अनित्य है, नाशवान है, अध्रुव है, क्षणभंगुर है।

अकलंक : वाह रे वाह आपका क्षणिकवाद ! मैं पूछता हूँ आप स्वयं नित्य हैं या क्षणिक ?

संघश्री : मैं भी अनित्य हूँ और मेरा आत्मा भी अनित्य है। वह क्षण-क्षण में नया-नया होता है।

अकलंक : वाह ! वाह ! जिसने अबतक मेरे साथ चर्चा की है और जो अब चर्चा करेगा, वह आप स्वयं ही हैं या दूसरा है ?

संघश्री : नहीं, मैं नहीं हूँ। जिसने पहले आपके साथ चर्चा की, वह दूसरा था; जो अभी बोलता है, वह दूसरा है और जो अब आगे बोलेगा, वह तीसरा।

अकलंक : तो क्या मैं जिससे प्रश्न पूछता हूँ, वही मुझे जवाब नहीं देता है ?

संघश्री : नहीं। आपका प्रश्न जो सुनता है, वह जीव अलग है और जो आपको जवाब देता है, वह जीव अलग है।

अकलंक : तो अब तक मेरे साथ चर्चा करनेवाले आप ही हैं या दूसरे ?

संघश्री : नहीं, वह मैं नहीं हूँ। वह आत्मा दूसरा था और मैं दूसरा हूँ।

अकलंक : वर्तमान क्षण से पहले आपका अस्तित्व था या नहीं ?

संघश्री : नहीं।

अकलंक : अरे! अरे! एकान्त क्षणिकवादी अज्ञान में अन्ध होकर अपने अस्तित्व का ही आप इंकार कर रहे हो। अपना अस्तित्व प्रत्यक्ष होने पर भी उसका स्वयं ही निषेध कर रहे हो। वाह रे! अज्ञान!! ठीक, अब मैं आपसे जो प्रश्न पूछूँगा, उनका जवाब आप स्वयं ही देंगे या कोई दूसरा ?

संघश्री : मेरे पीछे दूसरा आत्मा उत्पन्न होगा, वह जवाब देगा।

अकलंक : तब तो तुम्हें हार स्वीकार करनी पड़ेगी।

संघश्री : किसलिए ?

अकलंक : क्योंकि मेरे प्रश्न का उत्तर देने की जिम्मेदारी आपकी है, परन्तु आपके सिद्धान्त के अनुसार आप स्वयं तो मेरे प्रश्न का उत्तर दे नहीं सकते। इसलिए आपका एकान्त क्षणिकवाद का पक्ष हार गया। अथवा मेरे प्रश्न का जवाब देने के लिये आपको

अपनी नित्यता स्वीकारनी पड़ेगी और इस प्रकार भी आपका पक्ष उड़ जाता है और अनेकान्त सिद्ध होने पर जैनधर्म की विजय होती है।

(इस प्रकार अनेक दिनों तक संघश्री और अकलंककुमार में वाद-विवाद होता रहा, अन्त में संघश्री घबड़ा गये।)

संघश्री : (थोड़ी देर मस्तक पर हाथ लगाकर और फिर राजा की ओर देखकर) महाराज ! मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं, इसलिए यह चर्चा अब कल के लिये रखी जाए।

राजा : बोलिए, अकलंककुमार ! आपका क्या मत है ?

अकलंक : महाराज ! सही बात यह है कि इनके सिर में चक्कर नहीं आये हैं, बल्कि इनकी बुद्धि ही चक्कर में पड़ गयी है; इसलिए यह बहाना खोजा है। खैर, कल ये जवाब देवें, परन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि ये तो क्या, इनके भगवान साक्षात् भी आ जाएँ तो भी जवाब नहीं दे सकते।

राजा : आज की सभा कल तक के लिये स्थगित की जाती है।

(सभा बिखर जाती है, पर्दा गिरता है।)

चौथा दृश्य

अकलंक की जय और जैनधर्म की प्रभावना

(पुनः राज्यसभा शुरु होती है। सभा में एक ओर पर्दा है, उसके पीछे आचार्य संघश्री बैठे हैं, उनके बगल में एक मटका कपड़े से मुँह बाँधकर रखा गया है। अकलंक आदि सभा में प्रवेश करते हैं।)

राजा : क्यों, आज संघश्री महाराज अभी तक नहीं आये ? क्या अभी उनके सिर के चक्कर ठीक नहीं हुए ?

अजिनकुमार : महाराज, एक खास वजह से वे सामने आकर नहीं बोलेंगे, परन्तु पर्दे में रहकर जवाब देंगे।

राजा : ऐसा क्यों ?

जिनकुमार : महाराज ! वे हमारे अकलंककुमार का प्रताप सीधा नहीं झेल सकते हैं, इसलिए पर्दा रखा होगा।

अकलंक : ठीक है महाराज ! वे पर्दे में रहकर ही जवाब दें। देखिए, अब शीघ्र ही मैं इस पर्दे का रहस्य सामने लाता हूँ। बोलिये ! संघश्री ! यह आत्मा नित्य है या अनित्य ?

(पर्दे के पीछे से आवाज आती है—आत्मा नित्य नहीं है, सर्वथा क्षणिक है, दूसरे क्षण में वह नष्ट हो जाती है और अपने संस्कार छोड़ती जाती है, इसलिए वह नित्य जैसी प्रतिभासित होती है, यह भ्रम है। वास्तव में जगत में सब क्षणिक है।)

अकलंक : संघश्री ! आपने जो कहा है, उसे ये उपस्थित नागरिक साफ-साफ सुन नहीं सके हैं, अतः इसी बात को पुनः कहिये।

(अन्दर से किसी के बोलने की आवाज नहीं आती।)

अकलंक : बोलिए संघश्री ! क्यों नहीं बोलते ? बोलिए ! जवाब दीजिए ।

(थोड़ी देर फिर शान्ति रहती है ।)

राजा : बोलिये संघश्री ! अन्यथा आप निरुत्तर हो गये समझे जाएँगे ।

(पुनः थोड़ी देर शान्ति)

राजा : (खड़े होकर) कल भी आप निरुत्तर हो गये थे और आज भी आप निरुत्तर हो गये हैं, अतः मैं अकलंककुमार की विजय घोषित करता हूँ और अब जैनधर्म की रथयात्रा पहले निकलेगी ।

जिनकुमार : (हर्षोल्लासपूर्वक) बोलिये, जैनधर्म की जय !

(हाथ में स्थित जैन झण्डे को ऊँचा फहराकर पुनः बोलता है ।)

जिनकुमार : ' बोलिये जैनधर्म की जय ! अकलंककुमार की जय !! '

अकलंक : महाराज देखिये ! अब मैं इस पर्दे का रहस्य प्रकट करता हूँ ।

(पर्दे के पास जाकर उसको दूर हटा देते हैं और मटका हाथ में लेकर बताते हैं ।)

राजा : अरे ! यह क्या ?

अकलंक : सुनिये ! कल वाद-विवाद में संघश्री जवाब न दे सके थे, इसलिए परेशान होकर सिर में चक्कर आने का झूठा बहाना निकाला और फिर उन्होंने किसी भी प्रकार से विजय प्राप्त करने के लिये रात्रि में विद्या द्वारा एक देवी को साधा है । पर्दे के

पीछे से संघश्री नहीं बोल रहे थे, अपितु उनके स्थान पर इस मटके में स्थित देवी जवाब देती थी, परन्तु जिन-शासन के प्रभाव से जैनधर्म की भक्त देवी ने रात्रि में आकर मुझे यह बात बता दी थी, अतः आज संघश्री से एक ही बात पुनः दूसरी बार पूछी, परन्तु देव एक ही बात दूसरी बार नहीं बोलते हैं, इसलिए संघश्री का भेद खुल गया है।

राजा : अर र र र र.... ! धर्म के नाम पर इतना दम्भ ! इतना कपट !! अकलंककुमार ! आपके विद्वत्ताभरे न्याय-वचन सुनकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ है। अनेक युक्तियों द्वारा आपने अनेकान्तमय जैनधर्म को सिद्ध किया है। उससे प्रभावित होकर मैं जैनधर्म को स्वीकार करता हूँ और जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा में मैं ही भगवान के रथ का सारथी बनूँगा। मन्त्रीजी ! जिनेन्द्र रथयात्रा की तैयारी धूमधाम से करो। उसके लिये राज्य के भण्डार खोल दो और राज्य के हाथी, घोड़े आदि समस्त वैभव को रथयात्रा की शोभा हेतु बाहर निकालो।

मन्त्री : जैसी आज्ञा !

(ऐसा कहकर मन्त्री चला जाता है।)

बौद्ध शिष्यगण : (एक साथ सब खड़े होकर) महाराज ! हमारे आचार्यश्री ने जो अयोग्य कार्य किया है, उससे हमें दुःख हो रहा है। यह वाद-विवाद सुनकर हम भी जैनधर्म से प्रभावित हुए हैं, इसलिए बौद्ध धर्म छोड़कर हम भी जैनधर्म अंगीकार करते हैं।

प्रजाजन : (एक साथ खड़े होकर) महाराज ! हम भी जैनधर्म अंगीकार करते हैं।

संघपति : चलो बन्धुओ ! आज इन अकलंक महाराज के

प्रताप से हमारे जैनधर्म की बड़ी सुन्दर विजय हुई और खूब प्रभावना हुई। इस खुशहाली में हम सब जैनधर्म की महिमा का एक गीत गाते हैं।

सभाजन : हाँ चलो! चलो!! आज तो महा आनन्द का प्रसंग है।

(सब खड़े होकर भजन गाते हैं। संघपति के एक ओर राजा हैं, दूसरी ओर अकलंक हैं। जिनकुमार के हाथ में झण्डा लहरा रहा है। संघपति गीत गा रहे हैं।)

मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला ॥टेक ॥

इसी धर्म में वीरप्रभु ने, मुक्ति का मारग खोला।

मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला ॥1 ॥

इसी धर्म में निकलंक वीर ने, प्राण तजे बिन बोला।

मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला ॥2 ॥

इसी धर्म में अकलंकदेव ने, एकांती झकझोरा।

मेरा जैनधर्म अनमोला, मेरा जैनधर्म अनमोला ॥3 ॥

(पर्दे के पीछे रथयात्रा की तैयारी का सूचक बैण्ड बज रहा है।)

मन्त्री : (पीछे से आकर) महाराज! रथयात्रा की सारी तैयारी हो चुकी है। भगवान का रथ भी तैयार है। आप सब पधारिये।

(सब पर्दे में जाते हैं, बैण्ड-बाजे की आवाज चालू है। केवल संघश्री मुँह नीचे किये बैठे हैं। पर्दा गिरता है।)

(डम... डम... डम... इस प्रकार बाजा बज रहा है। 'जय हो! विजय हो!' ऐसा जयनाद होता है। भव्ययात्रा आती है। अकलंक महाराज के हाथ में झण्डा है। राजा, जिनकुमार, संघपति आदि साथ में हैं। मंगलबाजा बज रहा है, रत्नजड़ित गजरथ में जिनेन्द्र भगवान

विराजमान हैं। पीछे लाखों नागरिक हैं, रथयात्रा मंच पर आने पर भगवान को सिंहासन पर विराजमान करके अभिषेक-पूजन किया जा रहा है।

(अकलंक अभिषेक-पूजन की विधि सम्पन्न कराते हैं।)

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

ॐ ह्रीं भगवान श्री सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्रदेव के चरणकमल पूजनार्थ अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इतने में अजिनकुमार दौड़ता हुआ आता है और अकलंक को नमस्कार करता है।)

अजिनकुमार : (गद्गद् होकर) महाराज ! मुझे क्षमा करो, आज की भव्य रथयात्रा देखकर नगरी के लाखों लोग प्रभावित हुए हैं। ऐसी रथयात्रा में हमने विघ्न डाला है, इसके लिये बहुत-बहुत पश्चाताप है। इसलिए मेरी माता अश्रुपूरित नेत्रों से आपसे क्षमाप्रार्थी है और हम भी जैनधर्म को अंगीकार करते हैं। उदार दिल से आप हमें क्षमा करके जैनधर्म में लगायेंगे, ऐसी आशा करते हैं।

अकलंक : अवश्य ! अवश्य ! धन्य है तुम्हारी माता को ! जो वे अपने हिताहित का विवेक कर सन्मार्ग की ओर झुक रही हैं। जैनधर्म सारी दुनिया के लिये खुला है। आओ ! आओ ! जिसे अपना हित करना हो, वह जैनधर्म की शरण में आओ।

(आचार्य संघश्री अनेकों शिष्यों के साथ शरण में आकर गद्गद् भाव से कहते हैं।)

संघश्री : भाई ! भाई ! मुझे क्षमा करो। मुझ पापी ने ही तुम्हारे

भाई की हत्या कराई थी। मेरे दुष्ट कार्य के लिये मुझे क्षमा करो। आपका उदार एवं पतित-पावन जैनधर्म अवश्य मुझे क्षमा करेगा और मेरा कल्याण करेगा। हे अकलंक! आप सचमुच ही अकलंक हो। मुझे क्षमा करो और जैनधर्म की शरण में लो।

अकलंक : (वात्सल्यपूर्वक संघश्री के कन्धे पर हाथ रखकर) प्रसन्नता से जैनधर्म की शरण में आओ। जैनधर्म के द्वार सबके लिये खुले हैं। आओ! आओ! जिसे अपना कल्याण करना हो, वह जैनधर्म की शरण में आओ। पहले जो कुछ हो चुका, उसे भूल जाओ और शान्तचित्त से जैनधर्म की आराधना करो।

संघश्री : अहो! जैनधर्म की महत्ता मेरी समझ में अब आयी है और मुझे पुरानी भूलों पर पश्चाताप हो रहा है, इसी से पता चलता है कि आत्मा नित्य और अनित्य ऐसे अनेकान्त स्वरूप है। यदि पहले भूल करनेवाला स्वयं नित्य न हो, तो इस समय पश्चाताप कैसे हो? क्या भूल एक करता है और पश्चाताप दूसरा करता है? क्या सचमुच ऐसा हो सकता है? इसलिए आत्मा की नित्यता है— यह सही-सही समझ में आता है और भूल छोड़कर यथार्थता प्रकट हो सकती है, यही सूचित करता है कि अनित्यता भी है। इस प्रकार जैनधर्म के प्रताप से मुझे अनेकान्तमय वस्तु समझ में आयी है। आपके ही प्रताप से मुझे अपूर्व शान्ति का मार्ग प्राप्त हुआ है। मैं आपका महा उपकार मानता हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जैनधर्म में स्वीकार कीजिये।

अकलंक : देखो! ये जिनेन्द्र भगवान विराज रहे हैं। आओ! इनकी शरण लेकर जैनधर्म स्वीकार करो।

(संघश्री जिनेन्द्र भगवान की ओर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं और अकलंक जिसप्रकार बुलवाते हैं, वैसा ही बोलते हैं, प्रत्येक वाक्य एक बार अकलंक बोलते हैं, उसके बाद संघश्री बोलते हैं।)

अरहंते शरणं पव्वज्जामि। सिद्धे शरणं पव्वज्जामि।
साहू शरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णंतं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ॥

संघश्री : हे भगवान जिनेन्द्रदेव ! आपके पवित्र शासन को अंगीकार करके मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरा भाग्य है कि मुझे ऐसे उत्तम जैनधर्म की प्राप्ति हुई। अहो ! जैनधर्म के तत्त्व महान उत्तम है।

अकलंक : धन्य है भाई ! तुम्हारा ऐसा उत्तम हृदय-परिवर्तन देखकर मुझे अपार हर्ष हो रहा है और वात्सल्य उमड़ रहा है कि मानो मेरा निकलंकभाई ही तुम्हारे रूप में जैनधर्म की भक्ति करने आया हो। तुमने जैनधर्म स्वीकार किया है, इसलिए मुझे अत्यधिक हर्ष हो रहा है। भक्तिपूर्वक उसकी आराधना करके आत्मकल्याण करो। जगत में यह जिनेन्द्र भगवान का धर्म ही परम शरणरूप है।

संघश्री : भाई ! आपके प्रताप से आज मुझे जिनेन्द्र देव का धर्म प्राप्त हुआ, इसलिए मेरे हृदय में अपार हर्ष हो रहा है और जिनेन्द्र देव की भक्ति के द्वारा मैं अपना हर्ष व्यक्त करना चाहता हूँ।

अकलंक : यह बहुत अच्छी बात है। जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में हम भी आपका सहर्ष साथ देंगे।

(जैनधर्म के भक्त विद्वान संघपति गद्गद् भाव से निम्नलिखित भक्ति गाते हैं। अन्य सब लोग भी उसे दोहराते हैं।)

एक तुम्हीं आधार हो जग में, ए मेरे भगवान,
कि तुमसा और नहीं बलवान।

सम्भल न पाया गोते खाया तुम बिन हो हैरान,
कि तुमसा और नहीं गुणवान ॥टेक ॥

आया समय बड़ा सुखकारी, आतम बोधकला विस्तारी ।
मैं चेतन, तन वस्तु न्यारी, अनेकान्तमय झलकी सारी ॥
निज अन्तर में ज्योति ज्ञान की, अक्षय निधि महान ॥1 ॥
दुनिया में एक शरण जिनन्दा, पाप-पुण्य का बुरा है फंदा ।
मैं शिवभूप रूप सुखकन्दा, ज्ञाता-द्रष्टा तुम-सा बन्दा ॥
मुझ कारज के कारण तुम हो, और नहीं मतिमान ॥2 ॥
सहज स्वभाव भाव अपनाऊँ, पर-परिणति से चित्त हटाऊँ ।
पुनि-पुनि जग में जनम न पाऊँ, सिद्ध-समान स्वयं बन जाऊँ ॥
चिदानन्द चैतन्य प्रभु का, है सौभाग्य महान ॥3 ॥

(धीरे-धीरे भक्ति की धुन जमती जाती है । संघश्री एकदम रंग में आकर हाथ में चँवर लेकर भगवान के सम्मुख भक्ति से नाच उठते हैं । अत्यन्त गद्गद् होकर आँखों में अश्रुधारा बरसती है और इसप्रकार जैनधर्म की प्रभावनापूर्वक यह नाटक समाप्त होता है ।)

सभी : बोलो ! अनेकान्तमार्ग-प्रकाशक जिनेन्द्र भगवान की जय !!

परिशिष्ट**अकलंक साहित्य : एक परिचय**

प्रतिभासम्पन्न प्रज्ञावन्त श्री अकलंकस्वामी के विपुल साहित्य का मन्दबुद्धि से जितना परिचय मिल सका, वह यहाँ संक्षिप्त में दिया गया है। अकलंकस्वामी ने अनेकान्तमय जिनशासन को सिद्ध करता हुआ प्रज्ञाप्रचुर विपुल साहित्य रचकर जिनशासन की विजय पताका को लहराया है।

प्रमाण संग्रह : इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण के प्रकारों का वर्णन है। कुल नौ प्रस्ताव (प्रकरण) हैं, लगभग 88 श्लोक हैं, और उनका विवेचन (सौपज्ञवृत्ति) भी अकलंकस्वामी ने स्वयं की है। पहला श्लोक निम्नानुसार है:

श्रीमत् परमगंभीरं स्याद्वादासोघलांछनम्।

जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

तत्त्वार्थ राजवार्तिक : आचार्य उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र की यह महान टीका है, उसे तत्त्वार्थभाष्य भी कहा जाता है। तत्त्वार्थसूत्र की पूज्यपादस्वामी की सर्वार्थसिद्धि टीका में से अनेक लाक्षणिक पंक्तियों को अकलंकस्वामी ने राजवार्तिक में ऐसी विचक्षणता से गूँथ दी है कि मानो वे उसका ही अंग हों - ऐसा लगता है। अकलंकस्वामी की दूसरी गूढ़-गम्भीर रचनाओं के हिसाब से यह रचना बहुत सरल है। इसकी श्लोक संख्या 16000 है। पहला श्लोक निम्नानुसार है :

प्रणम्य सर्वविज्ञानमहास्पदमुरूश्रियम्।

निर्द्धौतकल्मषं वीरं वक्ष्ये तत्त्वार्थ वार्तिकम् ॥

लघीयस्त्रय : इसमें प्रमाण प्रवेश, नयप्रवेश और प्रवचन प्रवेश-
ऐसे तीन लघु प्रकरण होने से 'लघीयस्त्रय' नाम है। कुल 78 पद
हैं और उन पर गद्य में स्वोपज्ञ विवरण है। प्रथम श्लोक निम्नानुसार
है :

धर्मतीर्थकरम्योस्तु स्याद्वादिभ्यो नमोनमः ।
कषभादि महावीरान्तभ्यः स्वात्मोपलब्धये ॥

(इस ग्रन्थ पर प्रभाचन्द्राचार्यदेव ने 'न्यायकुमुदचन्द्र' नामक
विस्तृत टीका रची है तथा अभयचन्द्र सूरि ने भी तात्पर्यवृत्ति नाम
की टीका रची है।)

न्यायविनिश्चय : इस ग्रन्थ में (1) प्रतस्यप्रस्ताव, (2) परोक्ष
के भेदरूप अनुमान प्रस्ताव और (3) प्रवचन प्रस्ताव - ऐसे तीन
प्रकरण हैं। कुल 480 कारिका (पद्य) हैं और उनमें प्रत्येक कारिका
के उपोद्घातरूप से स्वोपज्ञ गद्यात्मक वृत्ति भी है। पहला श्लोक
निम्नानुसार है :

प्रसिद्धशेषत्वार्थ प्रतिबुद्धैकमूर्तये ।
नमः श्रीवर्धमानाय भव्याम्बुरुहभानवे ॥

(इस ग्रन्थ पर वादिराजसूरि की टीका भी है।)

अष्टशती : समन्तभद्र जैसे समर्थ आचार्यदेव द्वारा रचित
सुप्रसिद्ध 'देवागमस्तोत्र' अर्थात् 'आप्त मीमांसा' पर अकलंकदेव
ने एक अर्थ गंभीर टीका रची है, वह 800 श्लोक प्रमाण होने से
उसका नाम अष्टशती है और इस अष्टशती पर विद्यानन्दिस्वामी ने
8000 श्लोक प्रमाण 'अष्टसहस्री' टीका रची है। पूर्वापर आचार्यों
के साथ अकलंकस्वामी की सूक्ष्म और असाधारण प्रज्ञा इसमें

झलक रही है, अष्टशती की गहनता के लिये ऐसा कहा जाता है कि यदि विद्यानन्दिस्वामी ने अष्टसहस्री टीका द्वारा उसके भाव न खोले होते तो उसका रहस्य उसमें ही छुपा रहता। इस शास्त्र में युक्ति और परीक्षा द्वारा सर्वज्ञ का और उनके कहे हुए अनेकान्त तत्त्वों का निर्णय करके, उसके द्वारा आप्त की अर्थात् सर्वज्ञ भगवान की स्तुति की गयी है और युक्तिपूर्वक सर्वज्ञसिद्धि करके उससे विरुद्ध मान्यताओं को जोरदार युक्तियों द्वारा तोड़ दिया है।

सिद्धिविनिश्चय : 'सिद्धिविनिश्चय टीका' इत्यादि के आधार से विद्वानों का ऐसा निर्णय है कि 'सिद्धिविनिश्चय' नाम का शास्त्र (सौपज्ञ वृत्ति सहित) अकलंकदेव ने रचा है। उसमें इस प्रकार बारह प्रकरण हैं—प्रत्यक्षसिद्धि, सविकल्पसिद्धि, प्रमाणांतरसिद्धि, जीवसिद्धि, जल्पसिद्धि, हेतुलक्षणसिद्धि, शास्त्रसिद्धि, सर्वज्ञसिद्धि, शब्दसिद्धि, अर्थनयसिद्धि, शब्दनयसिद्धि, निक्षेपसिद्धि।

तदुपरान्त स्वरूपसम्बोधन और अकलंक स्तोत्र भी अकलंकदेव द्वारा रचित होना सम्भवित है।

इस प्रकार श्रीमद् अकलंकदेव महाप्रतिभा-सम्पन्न प्रज्ञापुरुष सन्त हुए हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वीतरागी जिनशासन की आत्महितकारी आराधना और प्रभावना में समर्पित किया है।

—ऐसे प्रज्ञापुरुष के पावन चरणों में विनम्र श्रद्धासुमन समर्पित है, वन्दन अर्पित है।